प्रथम अध्याय

हिंदी व्यंग्य का उद्भव और विकास

1.1 व्यंग्य की व्युत्पत्ति एवं स्वरूप :

व्यंग्य शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा से मानी जा सकती है। जिसका प्रयोग संस्कृत में विशिष्ट अर्थ भेद के साथ होता रहा है। संस्कृत में 'व्यंग्य शब्द का प्रयोग मुख्य रूप से शब्द शक्तियों केअंतर्गत ही हुआ है "शब्दों में अर्थ-द्योतन का जो गुण है उसको 'वृत्ति' या शक्ति कहा गया है। शब्द शक्तियाँ तीन मानी गई है अभिधा, लक्षणा, व्यंजना। ये तीनों शब्द शक्तियाँ क्रमशः वाच्य, लक्ष्य और व्यंग्य अर्थों का बोध कराती है।''[1]

"व्यंजना शक्ति शब्द और अर्थ की वह शक्ति है जो अभिधा आदि शक्तियों के चूक जाने पर एक ऐसे अर्थ का अवबोधन कराया करती है, जो एक सर्वथा विलक्षण प्रकार का अर्थ हुआ करता है।''[2] संस्कृत आचार्यों ने शब्द की तीन शक्तियों का वर्णन अपने ग्रंथों में किया, जो की अभिधा, लक्षणा तथा व्यंजना हैं। अभिधा शब्द शक्ति के अंतर्गत शब्द के मुख्यार्थ या सामान्य अर्थ को ग्रहण किया जाता है, जब अभिधा माध्यम से शब्द की पूर्ण अभिव्यक्ति नहीं होती है। तब लक्षणा के माध्यम से अर्थ का पता लगाया जाता है अर्थात् कहे हुए वाक्य का लक्ष्य क्या है? इसके माध्यम से लक्ष्यार्थ की प्रतीती लक्षणा शब्द शक्ति के द्वारा होती है किंतु शब्द की तीसरी व्यंजना शब्द शक्ति अभिधा और लक्षणा से एकदम अलग है और यह शब्द के एक अलग ही अर्थ का बोध कराती है अर्थात् जब कहा कुछ जाता है और उसका अर्थ कुछ और ही होता है, इस प्रकार के अर्थ को समझने के लिए व्यंजना शब्द-शक्ति की आवश्यकता पड़ती है। ये शब्द शक्ति शब्द के व्यंग्यार्थ का बोध कराती है।

व्यंजना शब्द शक्ति का व्यंग्य में महत्त्वपूर्ण स्थान है। 'अंजन' धातु में 'वि' उपसर्ग लगाने से 'व्यंजन' शब्द निर्मित हुआ है जिसका अर्थ होता है विशेष प्रकार का अंजन। जिस प्रकार आँखों में लगा हुआ अंजन दृष्टि दोषों को दूर करके निर्मल बना देता है उसी प्रकार व्यंजना शक्ति शब्द के मुख्यार्थ एवं लक्ष्यार्थ को पीछे छोड़ती हुई उसके मूल में छिपे हुए अकथित अर्थ को द्योतित कराती है। इस संदर्भ में आचार्य विश्वनाथ ने 'साहित्य दर्पण' में व्यंजना के विषय में कहा है-

"विरतास्वाभिधाधासु ययाऽर्थो बोध्यते परः।

सा वृत्तिर्व्यज्जना नाम शब्दस्यार्थादिकस्य च।।"[3]

अर्थात् अभिधा तथा लक्षणा अपने अर्थ का बोध कराकर जब विरत हो जाती है तब जिस शब्द शक्ति द्वारा व्यंग्यार्थ ज्ञात होता है, उसे व्यंजना शब्द शक्ति कहते हैं। व्यंजना ही व्यंग्य का बीज माना जा सकता है। समाज में मानव-मूल्यों की स्थापना के लिए व्यंग्य का उद्गम हुआ है। अतः अभिधा और लक्षणा का व्यंग्य विधा से विशेष संबंध नहीं होता है, लेकिन व्यंजना शक्ति शब्द और अर्थ की वही शक्ति है जो अभिधा और लक्षणा शक्तियों के समाप्त हो जाने पर एक सर्वथा विलक्षण प्रकार के अर्थ का अवबोधन कराती है, "व्यंग्य शब्द भारतीय साहित्य में नया नहीं है, हिंदी साहित्य कोश के अनुसार 'वि' तथा 'अंग' के योग से व्यंग तथा व्यंग से 'व्यंग्य' शब्द का निर्माण हुआ।"[4]

छविनाथ मिश्र व्यंग्य शब्द की व्युत्पत्ति वि+अज्+ण्यत् से बताते हुए अपने विचार इस प्रकार प्रकट करते हैं-

"व्यंग्य विशेषण है और इसे उपलक्षित अर्थ, व्यंग्योक्ति, परोक्ष संकेत या सब्जेक्टिव मीनिंग भी कहते है।"[5]

संस्कृत साहित्य में व्यंग्य का प्रयोग आधुनिक 'व्यंग्य' के अर्थ में न होकर संपूर्ण काव्यशास्त्रीय अध्ययन के परिप्रेक्ष्य में व्यंग्यार्थ (व्यंजित लेने वाला अर्थ) के रूप में प्राप्त होता है। 'व्यंग्य' का संबंध मूलतः अर्थबोध की प्रक्रिया से रहा है।

साहित्यकारों की महिमा का प्रकाशन व्यंजना शक्ति में ही निहित होता है। व्यंजना के द्वारा जो अर्थ ध्वनि प्राप्त होती है, आनंदवर्धन आदि ध्वनिवादी आचार्यों ने उसे ही काव्य का प्राण माना है। "काव्य के ध्वन्य अथवा व्यंग्य अर्थ का शब्दार्थानुशासन के ज्ञान मात्र से ही बोध नहीं होता अपितु उसके लिए काव्यार्थ के मर्म तक पहुँचने वाली बुद्धि तथा काव्यार्थ के तत्त्व ज्ञान आवश्यक है। कविता की समझ रखने वाले पाठक वाच्यार्थ की अवहेलना कर झट से व्यंग्य अर्थ तक पहुँच जाते हैं।"[6]

"जिस प्रकार से शब्दों के समन्वित अर्थ द्वारा वाक्य के अर्थ का बोध हो जाता है उसी प्रकार वाच्यार्थ की प्रतीती से व्यंग्य अर्थ की प्रतिपत्ति होती है"[7] अर्थात् व्यंग्य को समझने के लिए शब्दार्थ का ज्ञान होना ही आवश्यक नहीं है, बल्कि इसके साथ ही साथ काव्य के मर्म तक पहुँचने की आवश्यकता होती है क्योंकि व्यंग्य सीधे न करके वक्र रूप में किया जाता है अतः इसके लिए प्रखर बुद्धि का होना आवश्यक है, जो वाच्यार्थ को जानने के पश्चात् व्यंग्यार्थ तक पहुँच सके।

"व्यंग्य अर्थ को ध्वनित करने वाली शब्द वृत्ति को विद्वानों ने व्यंजना का नाम दिया है कुछ ने इसे 'रसना' भी कहा है, क्योंकि इस रूप 'व्यंग्य' इसी वृत्ति से प्रकट होता है।"[8]

"भारतीय काव्य शास्त्र में व्यंग्य शब्द का प्रयोग इसी परंपरागत अर्थ में होता रहा है। आधुनिक हिंदी समीक्षा में व्यंजना शब्द का प्रयोग तो पारम्परिक अर्थ में ही होता है किंतु व्यंग्य का अर्थ संदर्भ बदल गया है।"[9] संस्कृत साहित्य तथा प्राचीन हिंदी साहित्य में 'व्यंग्य' का प्रयोग काव्य या गद्य में मात्र पाठक

के मनोरंजन के लिए होता था जिसका कोई उद्देश्य नहीं होता था, किंतु आधुनिक हिंदी साहित्य में 'व्यंग्य' एक विधा के रूप में विद्यमान है जो निरूद्देश्य नहीं है।

डॉ. बालेंदु शेखर तिवारी व्यंग्य की गहराई को इस प्रकार स्पष्ट करते हैं, "व्यंग्य शब्द 'वि' उपसर्ग पूर्वक अञ्ज धातु में ण्यत् प्रत्यय लगाकर बनाया गया है जिसके कई अर्थ हैं, विविक्षा द्वारा निर्देश, सांकेतिक अर्थ और शब्द की तीसरी शक्ति व्यंजना द्वारा निर्दिष्ट अर्थ। इस विभिन्न अर्थ से मिलते-जुलते किंचित उद्देश्य विशिष्ट अर्थ में 'व्यंग्य' शब्द का प्रयोग आज हो रहा है।''[10]

इस प्रकार साहित्य में व्यंग्य का अर्थ व्यक्ति और समाज के दोषों न्यूनताओं को सीधें न कहकर वक्रोक्ति के माध्यम से की गई वह अभिव्यक्ति है जिसका उद्देश्य सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, नैतिक अन्याय, विसंगतियों विषमताओं तथा अंतर्विरोधों को दर्शाना तथा उसे दूर करने के उपाय सुझाना है।

साहित्यिक संदर्भ में 'व्यंग्य, अंग्रजी शब्द 'सेटायर' का हिंदी पर्याय माना जाता है। 'सेटायर' शब्द के लिए कोशों में कई शब्द प्रयुक्त हुए हैं डॉ. कामिल बुल्के ने 'सेटायर' के लिए व्यंगिका, व्यंग्य रचना, प्रहसन, व्यंग्य, उपहास और विद्रूप शब्द दिए हैं।''[11] "कुछ कोशों में आइरनी को भी व्यंग्य के रूप में परिभाषित किया है।''[12] डॉ. रामकुमार वर्मा ने भी आइरनी को व्यंग्य शब्द का समानार्थक माना है तथा सेटायर को विकृति का।''[13] बरसाने लाल चतुर्वेदी विकृति को सेटायर के लिए उपयुक्त नहीं मानते हैं। उनके अनुसार, "विकृति शब्द सेटायर के लिए इसलिए समीचीन नहीं है, क्योंकि विकृति तो हास्य, वचन, वैदग्ध, वक्र उक्ति, प्रहसन और व्यंग्य सबके लिए ही आवश्यक आधार है।''[14]

"सेटायर शब्द लैटिन शब्द 'SATURA' से बना है जिसका अर्थ गड़बड़झाला है। सैतुरा के कम से कम दो रूप विकसित हुए थे जिसका एक रूप बाद में प्रचलित रहा और यह रूप पद्य-निबंध के समान था। पुरातन काल में सैतुरा शब्द परनिंदा के अर्थ में प्रयुक्त होता था और ऐतिहासिक अर्थ की छाया

वर्तमान सैटायर शब्द पर भी पड़ी है। अब सेटायर में केवल परनिंदा नहीं होती है कुछ बातों में हेर फेर होता है। आलम्बन की खिंचाई होती है या आलम्बन की तुलना चिढ़ाने योग्य, बदनाम या काबिले नफरत चीज से की जाती है या बात को उलट दिया जाता है या उसे बातों में उड़ा दिया जाता है।''[15]

अनिल राकेशी ने सेटायर शब्द के अर्थ को इस प्रकार बताया है, ''सेटायर शब्द लैटिन शब्द सैटूरा से निकला है जिसका अर्थ था भरपूर और बाद में इसका अर्थ हो गया विभिन्न चीजों का मिश्रण या घालमेल।''[16]

गिल्बर्ट हिगेट ने सेटायर को खाद्य पदार्थ से संबंधित माना है उनके अनुसार ''संभवतः यह शब्द आहार या खाद्यान्न से संबंधित था। देवताओं को अर्पित किए जाने वाले मौसम के पहले फलों के पंचमेल को 'लैंक्स सैंटूरा' कहा जाता था। वस्तुतः इसकी मूल उत्पत्ति के अनुसार सेटायर में विविधता होनी चाहिए इसमें व्यापकता होनी चाहिए और इसे अपरिष्कृत तथा जीवंत होना चाहिए।''[17]

कुछ विद्वानों ने 'व्यंग्य' शब्द सेटायर से अधिक व्यापक माना है, ''व्यंग्य शब्द भारतीय साहित्यशास्त्र में अपना एक निश्चित परम्परागत अर्थ रखता है जो 'सेटायर' से कहीं अधिक व्यापक है। इसलिए उसे व्यंग्य काव्य या व्यंग्य साहित्य कहना भी उचित नहीं है। ये दोनों शब्द वस्तुतः ध्वनि काव्य के ही पर्याय हैं। सेटायर को व्यंग्य गीत कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि व्यंग्यात्मकता को गीत में सीमित करने की धारणा अपने आप में बड़ी विडम्बनापूर्ण है इसलिए उसके लिए सर्वाधिक लोक प्रचलित शब्द व्यंग्य ही स्वीकार कर लेना चाहिए।''[18]

हिंदी साहित्य के विकास के साथ 'व्यंग्य' का अर्थ एक सा नहीं रहा है। उसमें निरंतर पविर्तन होता रहा है। ''व्यंग्य शब्द जो संस्कृत में ध्वनित या प्रतीयमान का पर्यायवाची था हिंदी में वह सामान्य बोलचाल में ताना, चुटकी, कटाक्ष, बोली-ठोली, बिरह आदि का पर्याय बन गया है।''[19]

डॉ. शेरजंग गर्ग ने व्यंग्य के अर्थ को इस प्रकार समझाया है। प्राचीन भारतीय वाड्मय में व्यंग्य हमारे अभिष्ट अर्थ में कहीं-कहीं तो लिखा गया है किंतु इस संज्ञा का अस्तित्व इस अर्थ में नहीं था। कभी उसे 'परिहास' कहा गया कभी 'चुहुल' कभी खिल्ली उड़ाना कभी भंडौवे के रूप में प्रयुक्त किया गया और कभी 'स्यापा' कहकर पुकारा गया। शुद्ध व्यंग्य लेखन की परंपरा भारतेंदु युग से विकसित होनी आरंभ हुई क्योंकि भारतेंदु कबीर के समान ही सामाजिक विसंगतियों, विकृतियों और विद्रूपताओं के प्रति खड़गहस्त थे।''[20] इससे यह तथ्य परिलक्षित होता है कि व्यंग्य का वर्तमान अर्थ पुराने साहित्य में प्रचलित नहीं था। स्पष्टतः इसका कारण पाश्चात्य साहित्य का प्रभाव माना जा सकता है। इस प्रकार व्यंग्य का प्रचलित अर्थ आधुनिक युग की ही देन है। आधुनिक अर्थ में पुराने अर्थ के समान ही व्यंग्य शब्द को व्यंजना शक्ति द्वारा ही प्रकट किया जाता है किंतु नए अर्थ में व्यंग्य परिहास, उपहास आदि प्राचीन अर्थ के समान प्रयोजनहीन नहीं अपितु व्यंग्यकार का व्यंग्य लिखने के पीछे एक निश्चित उद्देश्य होता है इसी बिंदु पर प्राचीन और आधुनिक अर्थ को अलग किया जा सकता है।

व्यंग्य का मूल तत्त्व इस तथ्य में निहित है कि वह विसंगतियों एवं विरूपताओं, कुरीतियों, रूढ़ियों आदि पर सीधे प्रहार न करके तिरछे रूप में करता है। व्यंग्य की प्रकृति मूलतः नीर-क्षीर करने की होती है। अर्थात् स्पष्टतः वह स्तुति या प्रशंसा का समर्थन करता हुआ सा प्रतीत होता है किंतु वास्तव में उसका उद्देश्य वह नहीं होता है जो सामान्यतः दिखाई देता है। व्यंग्य हमारे यथार्थ की अभिव्यक्ति है। व्यक्ति तथा समाज की कमजोरियों, दुर्बलताओं, विषमताओं, कथनी-करनी के बीच के अंतर को व्यंग्य ही सही दिशा में हमारे सामने लाता है। कभी-कभी वह आक्रामक हो जाता है लेकिन इसमें भी नैतिक और सामाजिक हितों का उद्देश्य निहित होता है। तात्कालिक संदर्भ से लगाव व्यंग्य की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है इसलिए आलोचकों की दृष्टि में व्यंग्य को पत्रकारिता के दर्जे की वस्तु माना गया है, किंतु व्यंग्य तटस्थ होकर

सामाजिक विसंगतियों एवं विद्रूपताओं के प्रति उबल रहे आक्रोश की अभिव्यक्ति करता है इसलिए व्यंग्य अपनी पैठ से अधिक प्रहारक होता है।

1.2 व्यंग्य की परिभाषा

व्यंग्य को अनेक भारतीय एवं पाश्चात्य लेखकों ने उसके स्वरूप, लक्षण, वैशिष्ट्य को देखते हुए परिभाषित करने का प्रयास किया है। साहित्य की अन्य विधाओं के समान व्यंग्य की भी एक परिपूर्ण एवं सर्वमान्य परिभाषा सम्भव नहीं हो पाई है, क्योंकि उसका दायरा अत्यंत विस्तृत हो गया है। व्यंग्य के लक्षण तथा स्वरूप को देखते हुए उसके उतने ही गुण को परिभाषित करने का प्रयत्न व्यंग्यकारों ने किया है। व्यंग्य क्रोध, दुख, ग्लानि, असंतोष, क्रांति की भावना आदि विविध कारणों से होता है तथा इसे प्रकट करने के अलग-अलग ढ़ंग भी हैं, कहीं बहुत तीखे तो कहीं करूणापूरित व्यंग्य के दर्शन होते हैं। पाश्चात्य और भारतीय आलोचकों ने व्यंग्य की विभिन्न परिभाषाएं दी हैं। यहाँ हम पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानों द्वारा दी गई व्यंग्य की परिभाषाओं पर अलग-अलग विचार करेंगे।

पाश्चात्य आलोचकों की परिभाषाएं :

शार्टर आक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी के अनुसार, "व्यंग्य का अर्थ है लेखन या संभाषण में कटाक्ष वक्रोक्ति, उपहास आदि के प्रयोग द्वारा दोष, मूर्खता, अनाचार अथवा अन्य किसी भी प्रकार की बुराई की निंदा करना, कलई खोलना या मजाक उड़ाना। अर्थात् समाज की बुराईयों की सुधार के उद्देश्य से वक्रोक्ति के माध्यम से निंदा करना ही व्यंग्य है।"[21]

बैबसटर्स थर्ड न्यू इन्टरनेशनल डिक्शनरी में व्यंग्य को इस प्रकार परिभाषित किया गया है, "ऐसी साहित्यिक रचना जो मानवीय एवं व्यक्तिगत दोषों मूर्खताओं एवं अभावों को निंदा, उपहास, आलोचना

वक्राक्ति आदि माध्यमों के द्वारा रोकती है। इसके साथ-साथ वह कभी कभी सुधार के आशय से की जा सकती है।''[22]

डिक्शनरी आफ लिटेरेरी टर्म्स में हैरी शॉ ने व्यंग्य को इस प्रकार परिभाषित किया हैः व्यंग्य का अर्थ बुराई, मूर्खता या बेवकूफी का मज़ाक या माखौल उड़ाना, मानव जाति की कमजोरियों, दुर्गुणों तथा गलतियों की निंदा करने अथवा कलई खोलने के लिए वक्रोक्ति, कटाक्ष या उपहास का प्रयोग। व्यंग्य एक साहित्यिक विधा या तकनीक है जिसमें हास्य तथा वक्रोक्ति के मिश्रित प्रयोग से मानवीय क्रिया कलापों एवं संस्थाओं की आलोचनापूर्ण ढंग से व्याख्या की जाती है व्यंग्य में सामान्यतया नैतिक चिंता तथा किंही तौर-तरीकों, विश्वास अथवा परंपरा में सुधार लाने की प्रबल आकांक्षा दोनों ही भाव विद्यमान रहते हैं।''[23]

उपर्युक्त तीनों ही परिभाषाओं में व्यंग्य को ऐसी साहित्यिक रचना कहा गया है जिसका कार्य समाज में व्याप्त बुराईयों, दोषों, कथनी-करनी के अंतर, व्यक्तिगत एवं सामाजिक कमजोरियों दुर्गुणों, अनाचार आदि की वक्रोक्ति के माध्यम से निंदा या आलोचना करना होता है और इसी निंदा या आलोचना के माध्यम से वह व्यक्ति तथा समाज को सुधारने तथा उसे नैतिकता प्रदान करने का पूर्ण प्रयास करता है।

ए.निकोल के अनुसार, ''व्यंग्य इतना कटु हो सकता है कि वह किंचित भी हास्यजनक न हो। वह करारी चोट करता है। उसमें कोई नैतिक बोध नहीं होता है। उसमें न दया होती है, न करूणा, न उदारता। वह कभी-कभी व्यक्ति के शारीरिक गठन पर पूरी निर्ममता से चोट करता है। वह मनुष्य के चरित्र पर आक्रमण करता है। युग की रीति-नीति पर अक्षम्य भाव से टूट पड़ता है।''[24] व्यंग्य को सदैव ही हास्य के साथ जोड़कर उसे हास्य व्यंग्य कहा जाता है अर्थात् जहाँ व्यंग्य होता है वहाँ हास्य का होना अनिवार्य है। ए निकोल की परिभाषा में यह स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि व्यंग्य कभी-कभी इतना कठोर हो जाता

है कि उसमें हास्य का पुट समाप्त हो जाता है। वह इतना कटु हो जाता है कि उसमें दया, करूणा उदारता आदि भाव समाप्त हो जाते हैं, वह मनुष्य के हृदय को भेदता हुआ उस पर करारी चोट करता है।

मेरीडिथ के अनुसार, "व्यंग्यकार नैतिकता का ठेकेदार होता है बहुधा वह समाज की गंदगी की सफाई करने वाला होता है उसका कार्य सामाजिक विकृतियों की गंदगी को साफ करना होता है।"[25] जहाँ एक ओर निकोल व्यंग्य को इतना कटु तथा करारी चोट करने वाला बताते हैं जिसमें नैतिक बोध नहीं होता है वहीं दूसरी ओर मेरीडिथ व्यंग्यकार को नैतिकता का ठेकेदार बताते है जो समाज में फैली विकृतियों विषमताओं, कुरीतियों आदि गंदगी को साफ करने का कार्य करता है।

जोनाथन स्विफ्ट के अनुसार, "व्यंग्य एक प्रकार का आइना है जिसमें देखने वालों को अपने चेहरे के साथ-साथ दूसरों के चेहरे भी दिखाई देने लगते हैं। यही कारण है कि विश्व में व्यंग्य का स्वागत किया जाता है तथा बहुत कम लोग इससे अपने को पीड़ित अनुभव करते हैं।"[26] स्विफ्ट ने व्यंग्य को आइना कहा है। स्विफ्ट द्वारा कहे गए आइना शब्द को व्यंग्य के लिए उपयुक्त माना जा सकता है क्योंकि जिस प्रकार 'आइना' देखने वाले की काया को उसी रूप में दर्शाता है, जैसी वह है, उसी प्रकार व्यंग्य भी आइने के समान सामाजिक कार्यों को दर्शाता है।

मैथ्यू हागर्थ व्यंग्य को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि "व्यंग्य चेतावनी है कि मनुष्य वह खतरनाक जानवर है जिसमें मूर्खतापूर्ण कार्य करने की असीमित क्षमता है और यदि व्यंग्य द्वारा इस सत्य की स्पष्ट अभिव्यक्ति कर दी जाती है तो पर्याप्त है।"[27]

इस प्रकार व्यंग्य की पाश्चात्य अवधारणा में वक्रोक्ति या कटाक्ष रूप में समाज में फैली विषमताओं, विद्रूपताओं को दूर करने का प्रयास किया गया है। मनुष्य अनेक दोषपूर्ण कार्य करता है। इसे स्पष्ट रूप में अभिव्यक्ति द्वारा सामने लाना ही व्यंग्य कहलाता है। पाश्चात्य आलोचकों की परिभाषाओं को देखने से

यह भी ज्ञात होता है कि समाज में सुधार की भावना अनिवार्य रूप से निहित होती है, किंतु उसमें हास्य की अनिवार्यता परिलक्षित नहीं होती है। भारतीय आलोचकों में कुछ इस बात से सहमत हैं तो कुछ व्यंग्य में हास्य का होना भी अनिवार्य मानते है।

भारतीय आलोचकों की परिभाषाएं :

भारतीय साहित्यशास्त्र की परंपरा में व्यंग्य की स्वतंत्र विवेचना का अभाव सा रहा है। जो भी थोड़ा बहुत विचार व्यंग्य को लेकर हुआ है वह उसे हास्य का ही एक भेद या अंग मानकर परंपरागत अर्थ के रूप में विकसित हुआ है। इसी तथ्य को प्रभावित करते हुए आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने व्यंग्य को इस रूप में परिभाषित किया है, "व्यंग्य वह विधा है जहाँ कहने वाला अधरोष्ठ में हँस रहा हो और सुनने वाला तिलमिला उठे और फिर भी कहने वाले को जवाब देना अपने आपको और भी उपहासास्पद बना लेना हो जाता है।"[28] इसी प्रकार व्यंग्य में हास्य की उपस्थिति की अनिवार्यता को स्वीकार करते हुए डॉ. रामकुमार वर्मा ने व्यंग्य को निम्नलिखित रूप में परिभाषित किया है "आक्रमण करने की दृष्टि में वस्तु स्थिति को विकृत करके उससे हास्य उत्पन्न करना ही व्यंग्य है।"[29]

हरिशंकर परसाई व्यंग्य को जीवन की आलोचना करने वाला बताते हुए सामाजिक दायित्वों का अनुभव कराने वाला बताते है वे आचार्य द्विवेदी तथा डॉ. रामकुमार वर्मा की तरह व्यंग्य में हास्य का होना भी अनिवार्य नहीं मानते हैं। परसाई जी के अनुसार, "व्यंग्य जीवन से साक्षात्कार कराता है, जीवन की आलोचना करता है, विसंगतियों मिथ्याचरों और पाखण्ड़ों का पर्दाफाश करता है। यह नारा नहीं है l मैं यह कह रहा हूँ जीवन के प्रति व्यंग्यकार की उतनी ही निष्ठा होती है जितनी किसी गम्भीर रचनाकार की, बल्कि ज्यादा ही। वह जीवन के प्रति दायित्त्वों का अनुभव करता है। जिन्दगी बहुत जटिल चीज़ है। इसमें खालिस हँसना या खालिस रोना जैसी चीज़ नहीं होती, बहुत सी हास्य रचनाओं में करूणा की धारा है। अच्छा व्यंग्य सहानुभूति का सबसे उत्कृष्ट रूप होता है।"[30]

डॉ. शेरजंग गर्ग ने व्यंग्य की विभिन्न परिभाषाओं पर विचार करते हुए व्यंग्य की समेकित परिभाषा दी है। जिसमें समाज या व्यक्ति की दुर्बलताओं, विषमताओं आदि को कभी वक्र तो कभी सपाट शब्दों में व्यक्त किया जाता है, "व्यंग्य एक ऐसी साहित्यिक अभिव्यक्ति या रचना है, जिसमें व्यक्ति तथा समाज की कमजोरियों, दुर्बलताओं, करनी एवं कथनी के अंतरो की समीक्षा अथवा निंदा, भाषा की टेढ़ी भंगिमा देकर अथवा कभी-कभी पूर्णतः सपाट शब्दों में प्रहार करते हुए की जाती है। वह पूर्णतः अगम्भीर होते हुए गम्भीर हो सकती है, निर्दय लगते हुए तटस्थ लग सकती है, माखौल लगती हुई बौद्धिक हो सकती है,अतिशयोक्ति एवं अतिरंजना का आभास देने के बावजूद पूर्णतः सत्य हो सकती है। व्यंग्य में आक्रमण की उपस्थिति अनिवार्य है।"[31] शेरजंग जी मानते हैं कि व्यंग्य में निर्दयता केसाथ दयालुता हो सकती है, उसकी भाषा प्रहारात्मक लगते हुए भी तटस्थ हो सकती है, माजाक उडाते हुए भी उसमें बौद्धिकता होती है और कभी-कभी अतिश्योक्ति लगने पर भी वह सत्य होती है अतः व्यंग्य में विरोधाभास की स्थिति भी होती है।

वीरेन्द्र मेंहदीरत्ता ने व्यंग्य की परिभाषा इस प्रकार दी है, "शास्त्रीय दृष्टि में व्यंग्य मानव तथा जगत् की मूर्खताओं तथा अनाचारों को प्रकाश में लाकर उनके उपहास्य अथवा घृणोत्पादक रूप पर आलोचनात्मक प्रहार करने में समर्थ एक साहित्यिक अभिव्यक्ति है। व्यापक दृष्टि से देखा जाए तो संपूर्ण साहित्यिक आक्रोश को व्यंग्य की संज्ञा दी जा सकती है।"[32] उपर्युक्त दोनों परिभाषाओं में व्यंग्य को एक साहित्यिक अभिव्यक्ति कहा गया है। जिसमें आक्रोश एवं आक्रमकता को अनिवार्य तत्त्व मानते हुए उसे हास्य से अलग करने का प्रयास किया गया है।

नरेन्द्र कोहली के अनुसार, "कुछ अनुचित अथवा गलत होते देखकर जो आक्रोश जगता है-वह यदि काम में परिणत हो सकता, तो अपनी असहायता में वक्र होकर वह अपनी तथा दूसरों की पीड़ा पर हँसने लगता है तब वह विकट व्यंग्य होता है, पाठक के मन को चुभलाता सहलाता नहीं, कोड़े लगाता है।

अतः सार्थक और सशक्त व्यंग्य कहलाता है।''[33] कोहली जी भी मानते हैं कि जब सामाजिक बुराईयों को देखकर मन में आक्रोश जगता है तब वाणी द्वारा वह व्यंग्य कहलाता है।

डॉ. बालेन्दु शेखर तिवारी के अनुसार, "व्यंग्य एक विशिष्ट समानधर्मी प्रेरणाविधि अथवा एक विशिष्ट मानसिक भंगिमा है जिसका उद्भव अंतर्विरोधों के कारण होता है और जिसमें व्यक्ति अथवा व्यवस्था विशेष के दौर्बल्य की अपेक्षात्मक अभिव्यक्ति द्वारा परिवर्तन का अभीष्ट पूर्ण होता है।''[34] अर्थात् समाज में अनुचित कार्यों को होता देख मन में उसके प्रति विरोध उत्पन्न होता है, और व्यंग्य के माध्यम से ही समाज में हो रहे उन अनुचित कार्यों में परिवर्तन लाया जा सकता है।

मधुकर गंगाधर जी की परिभाषा में भी व्यंग्य को असत्य पर प्रहार करने वाला बताया गया है किंतु इनकी परिभाषा अन्य परिभाषाओं से थोड़ी अलग है क्योंकि इनकी परिभाषा को देखने पर ऐसा लगता है कि जैसे इन्होंने व्यंग्य का मानवीकरण किया हो। इनके अनुसार, "व्यंग्य जिसमें सत्य की आत्मा है निर्भीकता की काया है, हास्य का झीना वस्त्र है और असत्य पर प्रहार करने की तत्परता है। वाग्-वैदग्ध्य और विलक्षणता दो नासापुट हैं। युद्धोरत, प्रहारधर्मी व्यंग्य धीरोदात्त हाथ में जयी अस्त्र होता है। सींकिया प्रयोगी इसे फेंककर अपना ही दाँत गँवाता है।''[35] बेढ़ब बनारसी के अनुसार, "जब किसी व्यक्ति या समाज की बुराई को सीधे शब्दों में न कहकर उल्टे या टेढ़े शब्दों में व्यक्त किया जाता है। तब व्यंग्य की सृष्टि होती है। जब व्यंग्य में क्रोध आ जाता है, तब हास्य की मात्रा कम हो जाती है।''[36] बेढ़ब बनारसी भी समाज की बुराईयों को वक्र रूप में व्यक्त करने को ही व्यंग्य मानते हैं।

अनिल राकेशी ने व्यंग्य की एक सम्यक् परिभाषा इस प्रकार दी है, "व्यक्ति एवं वर्ग के सर्वगुणों, दुर्बलताओं, मूर्खताओं, कथनी-करनी के अंतर तथा समाज में व्याप्त अन्याय, अनाचार, शोषण, पाखण्ड,

अंधविश्वास जड़ता आदि बुराईयों पर जब उपहास, वक्रोक्ति, विद्रूप, विडम्बना, अतिरंजना, अपकर्ष अथवा किसी ऐसी ही अन्य विधि से प्रहार किया जाता है, तो इसे व्यंग्य कहते हैं। आक्रामकता तथा सामाजिक सोद्देश्यता व्यंग्य के अनिवार्य तत्त्व है। पहली के बिना वह भडैंती तथा दूसरी केबिना विद्वेषपूर्ण आक्षेप बन कर रह जाता है। व्यंग्य परिहास हो यह आवश्यक नहीं, किंतु उसमें आक्रोश और आक्रामकता का होना अनिवार्य है।''[37] अनिल राकेशी की यह परिभाषा व्यंग्य को उसके आधुनिक अर्थ में पूर्ण समग्रता तथा व्यापकता के रूप में सूक्ष्मता के साथ व्याख्यायित करती है। अतः इसे सर्वाधिक उपयुक्त एवं सटीक परिभाषा माना जा सकता है, किंतु सामाजिक सोद्देश्यता तथा आक्रामकता केसाथ-साथ साहित्यिकता भी व्यंग्य का एक अनिवार्य तत्त्व है क्योंकि इसके अभाव में व्यंग्य केवल अपशब्द बनकर ही रह जाते हैं।

व्यंग्य की उपर्युक्त परिभाषा में से यह तथ्य परिलक्षित होता है कि आक्रोश आक्रामकता हास्य-विनोद एवं सामाजिक सोद्देश्यता व्यंग्य के मूल तत्त्व है। व्यंग्य में यर्थाथता होती है यह जीवन के वास्तविक अंतर्विरोधों तथा विकृतियों का दर्पण होता है। इसी कारण व्यंग्य को आलोचक अन्य लेखन विधा से अलग मानते हैं। व्यंग्य एक सामाजिक मनोविनोदी और अनुप्रेरक विधा है। सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियों के बदलने के साथ ही व्यंग्यकार की दृष्टि उसके लक्ष्य तथा उसकी प्रहार धर्मिता में भी परिवर्तन आते रहे हैं। सामाजिक विकृतियों और विसंगतियों के गहरे संकट के दौर में जहाँ व्यंग्य, प्रखर, कठोर, निर्मम तथा ध्वंसात्मक होता है। वहीं प्रगतिशील समाज के विकास एवं स्वस्थ्य जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा के रूप में व्यंग्य का रुख अधिक सकारात्मक, रचनात्मक एवं सृजनात्मक होता है। इस रूप में व्यंग्यकार व्यक्ति एवं समाज के जीवन से सम्पर्क स्थापित करके उसकी समस्याओं, विषमताओं एवं उसके अंतर्विरोधों को समझकर उन्हें उद्घाटित करता है। इससे वह समाज सुधार के उद्देश्यों का मार्ग प्रशस्त भी करता है।

1.3 हास्य का स्वरूप :

हास्य का सामान्य अर्थ है हँसना और हँसाना। पाश्चात्य साहित्य में हास्य का विवेचन 'कामदी' के संदर्भ में हुआ है। भारतीय काव्यशास्त्र में हास्य का विवेचन रसों के अंतर्गत ही किया गया है। क्रोध, घृणा प्रेम की भांति हास्य भी मानव जीवन का अनिवार्य पहलू है। यह सहज मनोभाव है। यह मनुष्य के हृदय में आनंद की उत्पत्ति करता है। आदिम काल में मनुष्य जब यायावरी जीवन व्यतीत करता था, उसे भाषा तक का ज्ञान नहीं था, तब भी वह इस सहज प्रवृत्ति से युक्त था।

हास्य के माध्यम से मन में आनंद की उत्पत्ति होती है। इसमें भाव तत्त्व की प्रधानता होती है। यह निष्प्रयोजन होता है। यह केवल मनुष्य का मनोरंजन करता है। हास्य आनंद सूचक होता है और आनंद की प्राप्ति के कई कारण हो सकते हैं। जैसे किसी बच्चे का जन्म होने पर उसके परिवार के लोग आनंदित होकर बच्चे के रुदन पर हँस पड़ते हैं। अर्थात् हँसने के लिए किसी उद्देश्य का होना आवश्यक नहीं है। जब किसी मनुष्य के विषम या हास्यास्पद क्रियाकलापों, किसी वस्तु आदि को देखकर हम हँसते हैं वही हास्य होता है। अर्थात् कोई भी वस्तु जो हमें हँसा दे वह हास्य है।

हरिशंकर परसाई भी इसी संदर्भ में कहते हैं, "लोग किसी भी बात पर हँसते हैं। हलकी मामूली विसंगति पर भी हँस देते हैं। आदमी अगर घोड़े सरीखा हिनहिनाए, तो इस पर भी हम हँस देते हैं। दिवाली पर कुत्ते की दुम में पटाखे की लड़ी बाँधकर उसमें कुछ लोग आग लगा देते हैं। बेचारा कुत्ता तो मृत्यु भय से भागता और चीखता है, पर लोग हँसते हैं।"[38]

सृष्टि के आरम्भ से लेकर आज तक मनुष्य में हास्य की प्रवृत्ति रही है। हास्य का मानव जीवन में कितना महत्त्व है इसका उल्लेख करते हुए डॉ. बालेंदु शेखर तिवारी ने कहा है कि वास्तविकता तो यह है

कि जीवन के आस्वादन के लिए हास्य में अत्यंत आवश्यक है। इसी के द्वारा मनुष्य के हृदय में सरलता, सहानुभूति और सरसता की धारा प्रवाहित होती है। जीवन की जटिलताओं में उलझेमानव-मस्तिष्क को हास्य ही शांति और शीतलता प्रदान करता है।''[39]

1.4 हास्य की परिभाषा

हास्य जितना सहज भाव है उसे परिभाषित करना उतना ही कठिन है इसी कारण हिंदी साहित्य में हास्य रस शोध प्रबंध के लेखक डॉ. बरसाने लाल चतुर्वेदी ने भी हास्य की कोई ठोस परिभाषा नहीं दी है। कुछ पाश्चात्य तथा कुछ हिंदी विद्वानों ने हास्य के बारे में अपने विचार इस प्रकार प्रस्तुत किए हैं-

पाश्चात्य विचारक स्टीफन लीलाक के शब्दों में, "हास्य को जीवन की असंगतियों पर किए गए विचारों एवं उनकी कलात्मक अभिवयंजना के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।''[40] अर्थात् मानव जीवन में असंगतियों य हास्यपद है उसे कलात्मक रूप से अभिव्यक्त करना ही हास्य है।

आर्थर पोलार्ड हास्य को परिभाषित करते हुए लिखते हैं, "कॉमेडी जीवन तथा मानव प्रकृति को सद्भावना एवं सहानुभूति के साथ ग्रहण करती है, उसमें कभी-कभी क्षोभ का भाव भी होता है। किंतु उसका दृष्टिकोण सदैव उदार तथा सहानुभूतिपूर्ण होता है।''[41] हास्य चूँकि भाव प्रधान होता है अतः उसमें सहजता, उदारता तथा सहानुभूति का होना स्वाभाविक है।

शरीर वैज्ञानिकों ने हास्य की परिभाषा इस प्रकार दी है, "बाह्य वातावरण एवं कोई भूली भटकी स्मृति द्वारा मस्तिष्कगत विशिष्ट केंद्र की हलचल का परिणाम जो होठों एवं मन तथा मुख की भाव-भंगिमा पर लौटकर प्रतीत होता है। उसे हास्य कहते हैं।''[42] बाह्य वातावरण अर्थात् बच्चों को खेलता या हँसता हुआ देखकर या किसी जोकर आदि को देखकर तथा किसी स्मृति के द्वारा मस्तिष्क में अचानक

एक हलचल सी होती है। जिससे मन आनंदित हो उठता है और मुख एवं होठों पर हँसी आ जाती है। इसे ही शरीर वैज्ञानिक हास्य मानते हैं।

हरिशंकर परसाई ने हास्य को इस प्रकार परिभाषित किया है, "आदमी हँसता क्यों है? परम्परा से हर समाज की कुछ संगतियाँ होती हैं, सामंजस्य होते हैं, अनुपात होते हैं। ये व्यक्ति और समाज दोनों के होते हैं। जब यह संगति गड़बड़ होती है। तब चेतना में चमक पैदा होती है। इस चमक से हँसी भी आ सकती है और चेतना में हलचल भी पैदा हो सकती है।"[43] अर्थात् जब व्यक्ति और समाज में जो सामंजस्य जो संगतियाँ है, इनमें जब असंगति हो जाती है तब हमें हँसी आ जाती है। यही हास्य है।

डॉ. सावित्री सिन्हा ने हास्य को परिभाषित करते हुए अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किए हैं, "किसी घटना, क्रिया, परिस्थिति, लेख या विचारों की अभिव्यक्ति में निहित तत्त्व जो उनकी असम्बद्धता बेढंगेपन आदि के कारण मनुष्य के मन में एक विशेष प्रकार का आनंद या मज़ा उत्पन्न करता है वह हास्य या ह्यूमर है।"[44] किसी भी घटना, कार्य, वातावरण लेख आदि में असंगति दिखलाई देती है। उसे देखकर मानव मन में आनंद उत्पन्न होता है और मनुष्य को हँसी आ जाती है। इसे ही हास्य कहते हैं।

हास्य के विषय में बालेंदु शेखर तिवारी अपने विचार इस प्रकार प्रकट करते हैं, "हास्य विनोदिनी मन की अभिव्यक्ति मुद्रा है। जिसमें सुखप्रद कोमल भाव अंतर्निहित रहते हैं। जिनके माध्यम से चित्त की संचित गम्भीरता में आकस्मिक विस्फोट सा उठकर चित्त को कुछ क्षणों के लिए सात्विक आनंद से भर देता है।"[45] अर्थात् मनुष्य के हृदय में जो गंभीरता होती है। उसमें जब अचानक विस्फोट होता है। तब मन में कुछ क्षणों के लिए गंभीरता समाप्त हो जाती है और उसकी जगह आनंद की उत्पत्ति होती है। जिसे हास्य का नाम दिया जा सकता है।

इस प्रकार पाश्चात्य तथा हिंदी के विद्वानों के हास्य के विषय में विचारों को देखते हुए हम निश्चित रूप से कह सकते हैं कि हास्य को किसी परिभाषा के सूत्र में बांधना कठिन है। वह सोद्देश्य या निरूद्देश्य, किसी भी प्रकार का हो सकता है। हँसी उड़ाकर किसी को अपमानित भी किया जा सकता है। उत्तमकोटि के हास्य में बौद्धिकता की अपेक्षा की जाती है। 'हास्य' मानव मन की सहज अभिव्यक्ति होते हुए भी अपने परिवेश में जीवन के विभिन्न रंगों में स्वंय को निदर्शित करता रहता है।

1.5 हास्य और व्यंग्य में संबंध एंव अंतर्विभेद :

हास्य और व्यंग्य का संबंध बहुत ही गहरा है। जहाँ भी व्यंग्य की चर्चा होती है। वहाँ हास्य अवश्य ही उपस्थित होता है। दोनों ही विसंगतियों की ही उपज है। इनके संबंध के विषय में हरिशंकर परसाई ने कहा है, "व्यंग्य के साथ हँसी भी आती, पर वह दूसरे प्रकार की होती है। अत्यधिक गंभीर विषय पर व्यंग्य करते समय यदि उसमें विनोद भी सही मात्रा में हो तो पाठक के हृदय तक विषय की पहुँच सरलता से हो जाती है। पाठक को आनंद भी आता है। साथ ही विकृति के दर्शन भी होते हैं। व्यंग्य की कड़वी औषधि हास्य की मधुर चाशनी में घोलकर पिलाई जाए तो व्यंग्य की मार प्रभावी और मीठी हो जाती है। हास्य के हाने से व्यंग्य में अधिक रोचकता आती है।"[46] अर्थात् व्यंग्य आक्रामक एवं प्रहारात्मक होता है किंतु उसमें हास्य का पुट ड़ाल देने से उसे ग्रहण करना सरल हो जाता है। जिस प्रकार कड़वी औषधि में मीठा शहद या चाशनी मिलाकर देने पर रोगी उसे आसानी से पी लेता है। उसका प्रभाव भी कम नहीं होता और वह सरलता से ग्राह्य भी हो जाता है।

हास्य और व्यंग्य के संबंध में काका हाथरसी के विचार इस प्रकार हैं, "हास्य और व्यंग्य एक ही गाड़ी के दो पहिए है। हास्य के बिना व्यंग्य में मज़ा नहीं और व्यंग्य के बिना हास्य में स्वाद नहीं आता।

दोनों एक दूसरे का साथ दें तभी जन-गण-मन की मनोरंजनी गाड़ी ठीक से चलती है।''[47] काका हाथरसी हास्य और व्यंग्य को एक ही गाड़ी के दो पहिए के रुप में देखते हैं। अर्थात् जिस प्रकार किसी गाड़ी का एक पहिया न हो तो उसके बिना गाड़ी आगे नहीं बढ़ सकती है। उसी प्रकार हास्य के बिना व्यंग्य और व्यंग्य के बगैर हास्य अधूरा है।

अमृतराय की हास्य और व्यंग्य की अभिन्नता को मानते हैं। "हास्य और व्यंग्य के रग-रेशे को एक दूसरे से परस्पर अलग करके देख पाना कठिन है, क्योंकि ऐसा व्यंग्य मुश्किल से ही मिलेगा जिसमें हास्य का भी कुछ रंग न हो, व्यंग्य का कुछ काँटा या नोंक न हो।''[48] अमृतराय कहते हैं कि हास्य में व्यंग्य और व्यंग्य में हास्य चाहे प्रत्यक्ष रूप में, परन्तु होते जरुर है। जहाँ भी व्यंग्य की बात होती है हास्य भी वहाँ अनायास आ ही जाता है।

इस बदलते परिवेश में परम्पराएं तथा सीढ़ियां परिस्थितियों के साथ नहीं बदल पाती हैं इसलिए उनकी विशेष उपयोगिता भी नहीं रह जाती है। इन्हीं कारणों से विसंगतियां ही व्यंग्य को जन्म देती हैं और विसंगतियों से उपजा व्यंग्य हास्य के बिना संभव नहीं है। इस संबंध में डॉ. गिरिराज शरण अग्रवाल कहते हैं कि- "विसंगतियों और विडंबनाओं के रहते कोई भी व्यंग्य हास्य शून्य नहीं हो सकता। कोई भी हास्य व्यंग्य के बिना अस्तित्व में नहीं रह सकता। हास्य से हमारा अभिप्राय मसखरेपन, मजाक या जोकरी से नहीं है। हास्य से हमारा तात्पर्य है हास्यात्मक व्यंग्य।''[49] अर्थात् हास्य के बिना व्यंग्य और व्यंग्य के बिना हास्य होना असंभव है किंतु व्यंग्य में जो हास्य होता है वह केवल हँसी या मजाक नहीं है वह ऐसा हास्यात्मक व्यंग्य है जिसे सुनकर हँसी के बाद एक प्रकार की तिलमिलाहट पैदा होती है।

व्यंग्य में हास्य अनिवार्य तो नहीं है, किंतु बिना हास्य के व्यंग्य अत्यधिक चुभता है। उसमें अत्यधिक कटुता आ जाती है। इसी कारण काका हाथरसी ने बिना हास्य के व्यंग्य को कोतवाल का हंटर कहा है "वस्तुतः व्यंग्य में यदि हास्य नहीं होगा तो वह कोतवाल का हंटर हो जाएगा। उसकी पीड़ा से

तिलमिलाकर अभियुक्त कैसा अनुभव करेगा उससे आप अच्छी तरह से ही वाकिफ है फिर व्यंग्य की क्या जरुरत है।''[50] अर्थात् हास्य के बिना व्यंग्य सजा देने का कार्य न्यायालय करता है। इसीलिए व्यंग्य में हास्य का होना आवश्यक है, हास्य व्यंग्य के द्वारा हाने वाली चुभन तथा तिलमिलाहट को कम कर देता है।

अंततः इतना कहना उचित होगा कि व्यंग्य में हँसी की मात्रा कम हो या अधिक किंतु होती अवश्य है। कड़े कठोर व्यंग्य को हास्य थोड़ा लचीला बना देता है। प्रहारात्मक और आक्रात्मक व्यंग्य में हास्य का पुट दे देने से उसे सहन करने की शक्ति आ जाती है। अतः हास्य और व्यंग्य एक ही सिक्के के दो पहलू हैं जो एक दूसरे के पूरक के रुप में हमारे सामने आते हैं। एक दूसरे के बगैर इन दोनों का असित्तव कुछ भी नहीं है।

प्रारंभ से ही व्यंग्य के साथ हास्य शब्द जुड़ता चला आ रहा है। जहाँ भी व्यंग्य की चर्चा होती है वहाँ हास्य अवश्य ही उपस्थित होता है। इस क्रम में जब हास्य और व्यंग्य के अंतर की बात आती है तो सर्वप्रथम यह प्रश्न खड़ा हो जाता है कि हास्य और व्यंग्य क्या दो अलग विधाएं हैं। कुछ समय पहले अधिकांश समीक्षा व्यंग्य को हास्य का ही एक भेद मानते थे। लेकिन आज यह बात प्रायः मान ली गई है कि हास्य व्यंग्य में मूलभूत अंतर है। जैसे-जैसे व्यंग्य अपने तेवर में प्रखर होता गया, हास्य में जहाँ भाव की प्रधानता रहती है वहीं व्यंग्य में बुद्धि की। इस रूप में हास्य एक और जहाँ मनुष्य को हँसाने व गुदगुदाने का कार्य करता है वहीं दूसरी ओर व्यंग्य समाज की विषमताओं पर तीक्ष्ण प्रहार करके समाज सुधार का प्रयास करता है।

हास्य और व्यंग्य का अंतर स्पष्ट करते हुए एल. जी. पोट्स कहते हैं, ''कॉमेडी जीवन तथा मानव प्रकृति को सद्भावना एवं सहानुभूति के साथ ग्रहण करती है। उसमें कभी-कभी क्षोभ का भाव भी होता है। किंतु असका दृष्टिकोण सदैव उदार तथा सहानुभूतिपूर्ण होता है। इसके विपरीत व्यंग्य विकृति को नकारता ही नहीं वरन् उसको नष्ट करके ही छोड़ता है।''[51] अर्थात् हास्य का कॉमेडी में सहजता एवं सरलता का

भाव होता है। हास्य किसी भी बात को सरलता से ग्राह्य बना देता है। उसमें यदाकदा उदासीनता का भाव आता है। किंतु हास्य का दृष्टिकोण सदा ही उदारवादी होता है वहीं व्यंग्य सामाजिक असंगति एवं विकृति को पूरी तरह से नकारते हुए उसे पूर्ण रूप से समाप्त करता है।

हास्य और व्यंग्य के अंतर के विषय में डॉ. शेरजंग गर्ग अपना मत इस प्रकार प्रकट करते हैं, "व्यंग्य में जहाँ सिर से पाँव तक हिलाने वाला भाव है, वहाँ हास्य उछालने, गुदगुदाने, प्रसन्न करने एवं हर प्रकार के तनाव से मुक्ति पा जाने का परिचायक है। व्यंग्य मुक्त नहीं करता अपितु व्यक्ति को बंधनों और प्रतिबद्धताओं में आबद्ध करता है।"[52] अर्थात् व्यंग्य प्रहार करने वाला होता है। वह मन को उद्वेलित करता है। प्रयत्न करता है परिवर्तन करने के लिए। हास्य मानव मन को तनाव से मुक्त करके आनंदित करने का कार्य करता है। जबकि व्यंग्य मनुष्य को अपने कर्तव्यों से मुक्त नहीं होने देता है। बल्कि उसे उनके प्रति बांधने का कार्य करता है।

उपर्युक्त दोनों मंतव्यों में यह बात उभरकर सामने आती है कि हास्य जहाँ जीवन को सद्भावना, सहानुभूति, गुदगुदाने, प्रसन्न करने आदि के रूप में सामने आता है। वहीं व्यंग्य विकृति को नष्ट करने के लिए आबद्ध होता है। वह एक आक्रामक योद्धा के रूप में हमारे सामने आता है।

डॉ. शंकर पुणतांबेकर ने हास्य और व्यंग्य के अंतर को बड़ी ही सहजता से स्पष्ट करते हुए कहा है, "हास्य और व्यंग्य के फर्क को एक स्थूल उदाहरण से भी समझा जा सकता है। हास्य गिलास के आधेपन का माखौल उड़ाता है। तो व्यंग्य गिलास के आधेपन पर चोट करता है। हास्य बहिर्मुखी है तो व्यंग्य अंतर्मुखी। हास्य दर्द भुलाने का नशा जगाता है, तो व्यंग्य नशा भुलाने का दर्द जगाता है।"[53] हास्य किसी भी वस्तु का बाहरी परीक्षण कर प्रतिक्रिया देता है। जबकि व्यंग्य वस्तु का आंतरिक परीक्षण करके उसके होने के पीछे के रहस्य को जानने का प्रयास करता है। हास्य किसी के आधेपन का मज़ाक उड़ाता है लेकिन व्यंग्य उस आधेपन पर चोट करके उसे भरने का प्रयास करता है।

अमृतराय ने हास्य और व्यंग्य के अंतर को स्पष्ट करते हुए लिखा है, ''हास्य और व्यंग्य की प्रेरक स्थितियां लगभग समान है लेकिन इस परिस्थितियों के प्रति हास्यकार और व्यंग्यकार की प्रतिक्रिया भिन्न-भिन्न होती है। व्यंग्य अधिक प्रत्यक्ष रूप से समाजधर्मी होता है, हास्य अधिक मूल्यधर्मी होता है असकी समाजधर्मिता इसी मूल्यधर्मिता का अंग होती है।''[54] हास्य और व्यंग्य में कोई सुस्पष्ट विभाजन रेखा खींच पाना एक कठिन कार्य है क्योंकि मेरीडिथ के शब्दों में "व्यंग्यकार जैसे ही भाव प्रधान हुआ हास्य के क्षेत्र पहुँच जाता है और यदि हास्यकार में आलोचना प्रकृति प्रबल होगी तो वह व्यंग्य के क्षेत्र में पहुँच जाएगा।''[55]

हास्यकार समाज, धर्म व राजनीति में व्याप्त विसंगतियों, बुराईयों, विकृतियों का वर्णन भर करना हो अपने उद्देश्य की पूर्ति समझता है जबकि व्यंग्यकार इन बुराईयों को अप्रत्यक्ष रूप से दूर करना अपना उद्देश्य मानता है। "व्यंग्य और हास्य में बारीकी से देखने पर हमेशा काफी व्यापक अंतर पाया गया, मगर प्रयोग में उसे खास महत्त्व नहीं दिया गया है। यही कारण है कि गुदगुदाने, हँसाने, आनंदित करने वाने हास्य को कचोटने, प्रहार करने और तिलमिलाने वाले व्यंग्य के साथ हमेशा रखा जाता है''[56] अर्थात् हास्य और व्यंग्य में व्यापक अंतर है किंतु व्यंग्य में हास्य का पुट सदैव विद्यमान रहता है। इसका मुख्य कारण यह है कि व्यंग्य तीक्ष्ण एवं प्रहारात्मक होता है वह सामने वाले को तिलमिला उठने पर मज़बूर कर देता है किंतु उसमें हास्य की मात्रा होने पर सामने वाला उसे सहजता एवं सरलता से ग्रहण कर पाता है।

कन्हैयालाल नंदन हास्य और व्यंग्य के अंतर को इस प्रकार हमारे समक्ष रखते हुए कहते हैं, "हास्य विकृति का रस लेकर वर्णन करता है, विकृति के विरोध में पैदा होने वाली तीव्र बौद्धिक प्रक्रिया व्यंग्य के अंतर्गत आती है। हास्य शब्द कौतुक से भी पैदा हो जाता है, मसखरेपन से भी उत्पन्न किया जाता है, लेकिन व्यंग्य के पीछे विचार की एक गहरी सराठी होती है। जो हँसी भी पैदा कर लेती है। लेकिन उस हँसी के बाद उभरती है कचोट, तिलमिलाहट जो सोचने को मजबूर करती है।''[57] हास्य विकृति,

असंगति का वर्णन कर लोगों को हँसाने का कार्य करता है। जबकि व्यंग्य हँसाता तो है किंतु उस विकृति का विरोध करते हुए उसे समाप्त करने का प्रयास करता है। व्यंग्य में हँसी क्षणिक होती है, जो पीछे छोड़ जाती है एक प्रकार की कचोट, तिलमिलाहट। यही कचोट मजबूर करती है परिवर्तन के लिए।

गोपाल प्रसाद व्यास ने हास्य और व्यंग्य की प्रकृति को इस प्रकार शब्दांकित किया है, "विनोद कालिंदी की आनंद लहर है और व्यंग्य बरसाती गंगा की उफनती धारा का कालग्रासी भंवर, विनोद साहित्य का कान्ता सम्मित रस है और व्यंग्य गुलाब का काँटा।"[58] गोपाल जी ने नदी के माध्यम से हास्य और व्यंग्य में अंतर बताने का प्रयास किया है। हास्य नदी की साधारण लहर के समान है। जिसे देखकर मन आनंदित हो उठता है और व्यंग्य नदी की उस उफनती हुई लहर के समान है जिसमें भंवर बनते रहते हैं अर्थात् जिसे देखकर मन में डर उत्पन्न होता है और यही डर परिवर्तन के लिए बाध्य भी करता है।

हास्य और व्यंग्य के अंतर को स्पष्ट करते हुए शशि शुक्ला ने कहा है कि, "हास्य में मनोरंजन होता है, व्यंग्य में दंश, हास्य में स्नेह, करुणा, उन्फलता होती है, व्यंग्य में आक्रोश, आक्रामकता और चुभन, हास्य असंगतियों में आनंद खोजता है और व्यंग्य विसंगतियों में विद्रुपता-उद्घाटन, गम्भीर वैचारिक चिंतन और अन्याय के प्रतिकार के उपाय खोजता है। हास्य आनंदानुभूति देता है, व्यंग्य संयमित आघात करता है। हास्य गुदगुदाने वाला सुखद भाव है और व्यंग्य परिवर्तन प्रक्रिया की कष्टानुभूति। हास्य सहज सम्भाव्य और कल्पना प्रसूत है, व्यंग्य अनुभवपरक कटु सत्यों पर आधारित यथार्थ चिंतनयुक्त खुरदरी धरती है।"[59]

शशि शुक्ला ने हास्य और व्यंग्य के अंतर की एक परिपक्व परिभाषा दी है। इस परिभाषा में उन्होंने मूलभूत संवेदना, स्वरूप और उद्देश्य के आधार पर हास्य और व्यंग्य के अंतर को स्पष्ट किया है। इन्होंने हास्य और व्यंग्य, किस प्रकार एक दूसरे से भिन्न है इसका पूरा निचोड़ हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है।

डॉ. कृष्णदेव झारी ने हास्य और व्यंग्य के अंतर को इस प्रकार से समझाया है,

"हास्य में जब आलम्बन के प्रति सहानुभूति या अनुराग की भावना रहती है तो वह शुद्ध हास्य माना जाता है। जब हास्य में कटुता आ जाती है तो व्यंग्य कहलाता है।"[60] डॉ. झारी की परिभाषा से स्पष्ट है कि आलम्बन के प्रति भाव ही वह मूल तत्त्व है जो हास्य और व्यंग्य के पार्थक्य को समझने में सहायक होता है।

इस प्रकार हास्य और व्यंग्य स्वरूप, स्वभाव और संस्कार की दृष्टि से एक दूसरे से भिन्न है। हास्य का संबंध हृदय से होता है जबकि व्यंग्य का मस्तिष्क या बुद्धि से। हास्य में जहाँ शीतलता होती है वहीं व्यंग्य का मस्तिष्क में गरमाहट। व्यंग्य गंभीर होता है, वह हँसी उड़ाता है किंतु उस उपहास के द्वारा वह सुधार की अपेक्षा रखता है। हास्य कभी सोद्देश्य तो कभी निरूद्देश्य हो सकता है। किंतु व्यंग्य सदैव किसी विशिष्ट उद्देश्य के लिए किया जाता है। हास्य नासमझ, बुद्धिमान, प्रतिभाशाली तथा सामान्य सभी व्यक्ति का मनोरंजन करता है। व्यंग्य को समझने के लिए प्रतिभा एवं बुद्धितत्त्व का होना अति आवश्यक है।

अंत में हम कह सकते हैं कि हास्य केवल मनोविनोद के लिए होता है। लेकिन व्यंग्य सामाजिक विसंगतियों, बुराईयों आदि को उधेड़कर समाज को जागृत करते हुए उसमें परिवर्तन लाने का प्रयास करता है।

1.6 हिंदी साहित्य में व्यंग्य की परम्परा :

हिंदी साहित्य की परम्परा में व्यक्ति की सामाजिक चेतना को नवीन आयाम प्रदान करने में व्यंग्य लेखन की भूमिका महत्त्वपूर्ण रही है। वस्तुतः व्यंग्य विधा स्वातंत्र्योत्तर काल में विकसित हुई है, किंतु व्यंग्य का अस्तित्व हिंदी साहित्य के आदिकाल से लेकर आज तक के विविध कालखण्ड़ों में उपलब्ध रहा है। हिंदी साहित्य के आरम्भिक काल में राज्याश्रित कवियों की बहुलता रही है। सिद्धों, नाथों, के

धर्माश्रित काव्यों में तत्कालीन पाखण्ड को उभारने के प्रसंग में व्यंग्य के स्पष्ट संकेत उपलब्ध होने लगे हैं। सरहपा जैसे सिद्धों ने वैदिक विधानों पर व्यंग्यात्मक प्रहार किए हैं। इनके साहित्य में भी तत्कालीन समाज में व्याप्त पाखण्ड पर भी व्यंग्यात्मक प्रहार किया गया है।

उपवास, व्रत, पूजा-पाठ करने वाले पोंगा पंडित, पाप करके गंगा में स्नानादि को पुण्य कर्म मानने वाले लोगों तथा पौराणिक धर्मावलम्बियों पर व्यंग्य के अनेक तथ्य तत्कालीन समाज में उपलब्ध होते हैं। सरहपा ने कर्मकाण्ड़ के खण्डन की प्रक्रिया में वैदिक मान्यताओं पर व्यंग्य प्रहार किए हैं जैसे 'मंतण तंतण धेअण धारण। सत्त्व बिरे बढ़ विव्भय कारण।

इस रूप में यहाँ मंत्र तंत्र को व्यर्थ समझा गया हैं शबरपा ने भी तंत्र-मंत्र देवता आदि की व्यर्थता पर कटाक्ष किए हैं। कवि हरिषेण द्वारा 'धर्म पिरक्खा' में ब्राह्मण धर्म के अनेक पौराणिक आख्यानों तथा प्रसंगों को विसंगतिपूर्ण बताकर उन पर व्यंग्य किया है। यद्यपि इसके व्यंग्य में भौतिकवादी चार्वाकों जैसी प्रखरता नहीं मिलती, फिर भी इनकी रचनाओं में एवं साहित्यकार अधिकांशतः आयुधों की झनझनाहट एवं घुंघरूओं के झंकार में ही डूबे रहे। आयुधों की टंकार एवं पायल की झंकार के बाहुल्य के बीच इस वीर गाथा काल में भी व्यंग्य के दृष्टांत यत्र-तत्र उपलब्ध होते है। 'पृथ्वीराज रासो' में चन्द्र कवि के द्वारा जयचन्द पर व्यंग्य करते हुए उसे 'बैल' कहना तथा धीर-पुण्डीर की सहायता से पृथ्वीराज की गौरी विजय पर प्राप्त करना। इस विजय के उपरांत पृथ्वीराज उसे सम्मानित करता है, तब सामंत जैत्र तथा चामुण्ड द्वारा यह व्यंग्य किया गया कि धीर-पुण्डीर को गर्व आ गया कि उन्हीं के कारण सम्राट को विजय प्राप्त हुई है। पृथ्वीराज व्यंग्य की इस कटु उक्ति को सह नहीं जाता और धीर-पुण्डीर के पुत्र को दिल्ली से निर्वासित कर दिया। आदिकाल के अंत में हिंदी साहित्य में हास्य व्यंग्य की एक परंपरा सी चल पड़ी जिसका महत्त्वपूर्ण आगाज अमीर खुसरो की रचनाओं में होता है।

अमीर खुसरो हिंदी के चर्चित हास्य कवि कहे जाते हैं। इन्होंने खड़ी बोली में आम जनता की रूचि के अनुकूल पहेलियों, मुकरियों और सुखनों की रचना की जिसमें उनकी हास्य व्यंग्य संबंधी अभिरूचि का प्रस्फुटन परिलक्षित होता है। इन रचनाओं में निहित हास्य-व्यंग्य उनके सामाजिक अनुभव को अभिवयक्त करते हैं।

खुसरो फारसी के अच्छे विद्वान थे, अतः उनकी रचनाओं में फारसी का चुटीलापन परिलक्षित होता है। उनकी पहेलियों की रसिकता एवं विनोद क्षमता निम्न रूप में द्रष्टव्य है।

"एक नार ने अचरज किया। साँप मारि पिंजड़े में दिया।

जे जो साँप ताल को खाए, सूखे ताल साँप मर जाये।।"[61] (दियाबाती)

xxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxx

"श्याम वर्ण और दाँत अनेक, लचकत जैसी नारी,

दोनों हाथ से खुसरो खींचे और कहे तू आ री।।"[62] (आरी)

वहाँ यह स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है कि अमीर खुसरो के साहित्य में हास्य की प्रधानता है, तथा व्यंग्य की तीक्ष्णता का अभाव सा है। इनके साहित्य में व्यंग्य के प्रत्यय को ढूंढ़ने का प्रयास किया गया है इसलिए सरोज खन्ना "इन्हें हास्य को स्वतंत्र सत्ता प्रदान करने वाले हिंदी के प्रथम कवि के रूप में स्थापित करती हैं।"[63] व्यंग्य विधा स्वातंत्र्योत्तर काल की देन है। पश्चिम के प्रभाव से विकसित साहित्य की विधा है, लेकिन व्यंग्य का अस्तित्व हिंदी साहित्य के आदिकाल से लेकर आज तक के विविध कालखण्ड़ों में भी मिलता है। व्यंग्य तो वेदों में भी मिलता है। नाट्य में व्यंग्य के सुस्पष्ट संकेत प्राप्त होते हैं। सिद्ध और नाथ साहित्य में उपवास, व्रत, कैवल्य, पूजा-पाठ करने वाले पोंगा पंडित पाप कर गंगा में

स्नानादि को पुण्य कर्म मानने वालों पर, पौराणिक धर्मावलंबियों पर कटाक्ष किया गया है। ऐसे कटाक्ष के कारण ही सिद्ध तथा नाथ साहित्य अधिक मर्मस्पर्शी, सहज, सरल एवं लोकप्रिय बन सका था।''[64] बापूराव की इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि व्यंग्य का अस्तित्व हिंदी साहित्य के आदिकाल से लेकर आज तक के विविध काल खण्ड़ों में उपलब्ध है। सरहपा जैसे सिद्धों ने वैदिक विधाओं पर व्यंग्यात्मक प्रहार किए हैं। इनके साहित्य में तत्कालीन समाज में व्याप्त पाखण्ड पर भी व्यंग्यात्मक प्रहार किया गया है किंतु हिंदी साहित्य में व्यंग्य परंपरा का वास्तविक प्रस्फुटन कबीर साहित्य से प्रारम्भ होता है।

1.6.1 भक्तिकाल में व्यंग्य परंपरा

यद्यपि मध्यकाल के हिंदी साहित्यकार की अभिरूचि भक्ति की ओर अधिक रही है। वे या तो भक्ति रस में डूबकर राम कृष्ण की सौंदर्य उपासना में लीन रहते थे अथवा नायिका भेद लिखकर अपने आश्रयदाता राजाओं की दरबारी विलासिता के गीत गाते थे। उस प्रतिकूल परिस्थिति में व्यंग्य परंपरा के विकास का कोई अनुकूल वातावरण नहीं था परंतु कबीर जैसे संत कवियों का ध्यान तत्कालीन समाज की बढ़ती हुई विसंगतियों की ओर आकृष्ट हुआ और उसे समाज में फैलने से रोकने के लिए उन्होंने व्यंग्य के माध्यम से समाज को झकझोरने का कार्य किया। हिंदी साहित्य के इतिहास में कबीर ने न केवल व्यंग्य के काव्यात्मक स्वरूप का वातावरण तैयार किया अपितु उन्होंने व्यंग्य को एक नवीन दिशा प्रदान की। जिससे जनमानस को व्यंग्य के अनुकूल बनाया जा सके। कबीर की साखियाँ, उलटबासियाँ लोगों के बीच पढ़ी और सुनी जाने लगी। कबीर का व्यंग्य हास्य की परिधि से बाहर आकर समाज में परिवर्तन का नवीन मार्ग प्रशस्त करने लगा। कबीर ने तत्कालीन समाज में समभाव दृष्टि रखते हुए प्रत्येक जाति धर्म में व्याप्त अपना मत व्यक्त किया। उन्होंने पंडित मुल्लाओं आदि की कपटपूर्ण नीतियों से लोगों को सावधान करने का प्रयास किया तथा अपने व्यंग्य बाणों से उसका यथार्थ विश्लेषण किया-

"न जाने तेरा साहब कैसा है

मस्जिद भीतर मुल्ला पुकारे, क्या साहब तेरा बहिरा है?

चिउँटी के पग नेवर बाजे सो भी साहब सुनता है।

पंडित होय के आसन मारै, लंबी माला जपता है।।

अंतर तेरे कपट-कतरनी, सो भी साहब लखता है।

ऊँचा नीचा महल बनाया, गहरी नेव जमाता है।।

चलने का मनसूबा नाही रहने को मन करता है।

कौड़ी कौड़ी माया जोड़ी, गाड़ी जमीं में धरता है।।

जोहि लहना है सो नै जइहै, पापी बहि बहि भरता है।

सतवंती को गजी मिलै नहिं, वेश्य पहिरै खासा है।

जेहि धर साधू भीख न पावै, मडुंआ खात बतासा है।

कहत कबीर सुनो भाई साधो हरि जैसे को तैसा है।।"[65]

कबीर की बानी में वैयक्तिक, सामाजिक तथा धार्मिक असंगति पर तीव्र प्रहार है। अंधविश्वासों के निर्मूलन हेतु तथा जीवन में स्वस्थ मूल्यों की स्थापना के लिए उनके द्वारा व्यंग्य किया जाता था। हिंदू-मुस्लिम के धार्मिक आडम्बरों पर व्यंग्य करते हुए कबीर कहते हैं-

"मुंड मुंडाये हरि मिले सब कोई लेत मुंडाय।

बार-बार के मुंडते भेड़ न बैकुण्ड जाय।।'' [66]

xxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxxx

"दिन भर रोजा रखत है, राति हनत है गाय।

यह तो खून वह बंदगी, कैसे खुशी खुदाय।।''[67]

कबीर के लिखित बाह्याडम्बर तथा व्यंग्य के संदर्भ में डॉ. नगेंद्र ने लिखा है, "कबीर में घृणा के साथ दया की मात्रा कम नहीं। एक अंग्रेजी समालोचक ने व्यंग्य की विवेचना करते हुए लिखा है कि बढ़ते-बढ़ते पाप का रूप धारण कर लेती है और व्यंग्य का उद्देश्य धार्मिकता समन्वित हो जाता है। कबीर में ऐसा ही व्यंग्य मिलता है।''[68]

कबीर के व्यंग्य का मुख्य उद्देश्य था कि अपनी फटकार से धर्म के ठेकेदारों के चुंगल में फंसे निरीह समाज को मुक्त कराना तथा सरल एवं सहज मानवीय धर्म की वास्तविकता बताना। उनके व्यंग्य ने समाज में क्रांति का कार्य किया।

कबीर के बाद सूरदास ने भ्रमरगीत में सगुणभक्ति की श्रेष्ठता सिद्ध करने हेतु निर्गुण भक्ति पर अप्रत्यक्ष रूप में व्यंग्य किया है। सूरदास की गोपियों ने जहाँ उद्धव की ज्ञान गरिमा का मजाक उडाया है, उस प्रसंग में व्यंग्य का प्रत्यय परिलक्षित होता है। उद्धव की योजना समझकर गोपियाँ खीझ कर व्यंग्य करती हैं और उद्धव को ब्रज के बाहर जाने के लिए कहती है। भ्रमरगीत के निम्नलिखित उदाहरण द्रष्टव्य है-

"निर्गुण कौन देश को वासी?

मधुकर! हँयि समुझाय, सौंह दे बूझति साँच, न हाँसी

को है जनक, जननि को कहियत, कौन नारि, को दासी?

कैसो बरन, भेस है कैसो केहि रस में अभिलाषी?

पावैगो पुनि कियो आपनो जो रे! कहैगो गाँसी।

सुनत मौन ह्वै रह्यो ठग्यों सो सूर सबै मति नासी।''[69]

इसके अतिरिक्त गोस्वामी तुलसीदास की रचनाओं में भी व्यंग्य प्राप्त होता है। रामचरितमानस में शिव विवाह, नारद मोह, परशुराम-लक्ष्मण संवाद, रावण अंगद संवाद आदि की घटनाओं में व्यंग्य विविध उद्देश्यों को लेकर आया है। उनकी कृष्ण गीतावली में हास्य-व्यंग्य का पुट यत्र तत्र उपलब्ध होता है।

"विधि के बासी दासी तपी व्रतधारी महाबिनु नारि दुखारे।

गौतम तीय तरी 'तुलसी' से कथा सुनि में मुनिवृंद सुखारे।

हैं सिला सब चंद्रमुखी परसे पद मंजुल कंज तिहारे।

कीन्हीं भी रघुनायक जु! करूना करि कानन को पगु धारे।।''[70]

इस प्रकार से भक्तिकालीन कवियों के काव्य में व्यंग्य का प्रयोग हुआ है किंतु कबीर के काव्य में जो व्यंग्य है वह तीखे तथा तिलमिला देनेवाले व्यंग्य हैं। जिसमें हास्य का मिश्रण नहीं है। कबीर के बाद भक्तिकाल में जो व्यंग्य ही हैं और यह भी यत्र तत्र ही उपलब्ध होते हैं।

1.6.2 रीतिकाल में व्यंग्य परंपरा

भक्तिकाल के पश्चात् रीतिकाल में अधिक व्यंग्य नहीं मिलता। रीतिकालीन कवि अधिकतर अपने आश्रयदाताओं के स्तुतिगान में या फिर नारी का सौंदर्य वर्णन करने में ही प्रसन्न हुआ करते थे। इसलिए इस काल में व्यंग्य कम ही देखने को मिलता है। इस काल में व्यंग्योक्तियाँ कवि केशवदास, घनानंद, बिहारी, रहीम, वृन्द, रसखान, बेनी आदि की रचनाओं में यत्र-तत्र उपलब्ध है। 'बिहारी सतसई' प्रधान काव्य होते हुए भी इसमें व्यंग्य के अनेक उदाहरण मिलते हैं

"जपमाला, छापा, तिलक सरै न एकौ काम।

मन-काँचे नाचे वृथा, साँचे राँचे राम।।"[71]

यहाँ बिहारी ने धर्म के प्रति आडम्बर करने वाले लोगों पर व्यंग्य किया है। इसी प्रकार केशवदास की 'रामचंद्रिका' के चैथे प्रकाश में राजा जनक की सभा में सीता-स्वंयवर, बाणासुर-रावण के संदर्भ में व्यंग्य के उदाहरण मिलते हैं। कवि वृंद ने भी नीति के दोहों के माध्यम से समाज के अनैतिक व्यवहार का पर्दाफाश किया है। कवि रहीम ने समाज के उच्चवर्ग के लोगों की स्थिति के संबंध में अपने दोहों के माध्यम से व्यंग्य किया। रहीम कहते हैं कि सच्चे व्यक्ति इस जग में नहीं रह पाते हैं-

"अब रहीम मुश्किल पड़ी, गाढ़े दोऊ काम।

साँचे से तो जग नहीं, झूठे मिलै न राम।।"[72]

इस प्रकार छुट पुट रूप में हमें रीतिकाल में व्यंग्य के दर्शन होते हैं किंतु व्यंग्य का प्रवाह प्रभावी रूप से इस काल में उपलब्ध नहीं है।

1.6.3 भारतेन्दु युगीन व्यंग्य परंपरा :

कबीर के बाद भक्तिकाल एवं रीतिकाल में व्यंग्य का वह तीक्ष्ण प्रहार दब-सा गया था किंतु इतना तो उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि हिंदी साहित्य में भारतेन्दु युग से पूर्व भी व्यंग्य की परंपरा मिलती है। भक्तिकाल में सूरदास, तुलसीदास तथा रीतिकाल में वक्रोक्ति, अन्योक्ति तथा समासोक्ति के रूपों से किया गया व्यंग्य भारतेन्दु युग की व्यंग्य परंपरा से जोड़ने में सहायक सिद्ध हुआ है। वास्तव में कबीर के बाद भारतेन्दु युग में ही व्यंग्य की उस तीव्रता को पुनस्थापित करने का कार्य किया गया है। भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने स्वंय व्यंग्य का परिष्कार करके उसका नवीनीकरण कर गद्य एवं पद्य दोनों ही विधाओं को संवारने का कार्य किया। इनके समय में व्यंग्य की प्रखरता विशेष रूप से प्रहसनों के माध्यम से निखरी और इन प्रहसनों में सामाजिक विसंगतियों को प्रभावी ढंग से उभारा गया। इस काल के व्यंग्यकारों में भारतेन्दु हरिश्चंद्र, बालकृष्ण भट्ट, बालमुकुन्द गुप्त, प्रतापनारायण मिश्र, बद्रीनारायण चैधरी, राधाचरण गोस्वामी श्रेष्ठ व्यंग्यकार थे।

भारतेन्दु युग में अंग्रजी सभ्यता एवं संस्कृति के प्रभाव से समाज में आधुनिकता का संचार हो चुका था। अंग्रजों द्वारा भारत को लूटने की प्रक्रिया को अवरूद्ध करने में तत्कालीन साहित्यकारों ने नवजागरण लाने का प्रयास किया। उन लोगों ने अपने साहित्य में करारे व्यंग्यों से ब्रिटिश राजनीति को कटघरे में खड़ा करने का कार्य किया। इस युग में नाटक, एकांकी एवं प्रहसन आदि सभी में व्यंग्य का प्रयोग किया गया किंतु सबसे अधिक निबंधों का ही प्रधान्य बना रहा। भारतेंदु एवं उनके समकालीन व्यंग्यकारों ने काव्य के क्षेत्र में भी अपनी प्रतिभा का परिचय दिया। भारतेंदु ने हिंदी में पैरोडी साहित्य की परम्परा को स्थापित किया जिसका प्रारम्भ ‘बंदर सभा’(1879) से माना जाता है। उन्होंने ब्रिटिश शासकों के लूटेरे और लालची चरित्र को व्यंग्यात्मक शैली में प्रस्तुत किया है-

“भीतर भीतर सब रस चूसै

हँसि हँसि के तनम न धन मूसै

जाहिर बातन में अति तेज

क्यों सखि साजन, नहिं अंगरेज''[73]

भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने देश की पराधीनता और कुप्रथाओं पर भी व्यंग्य प्रहार किया है। 'लेवी प्राण लेवी' में व्यंग्य के माध्यम अंग्रेजों की स्तुति करने वाले भारतीयों पर तीखा व्यंग्य किया-"श्रीयुत लाई म्यौ साहिब बहादुर गवर्नर जनरल हिंद ने काशी में। नवंबर को लेवी का दरबार किया था.....वाह वाह दरबार क्या था। कठपुतली का तमाशा था या बल्लमटेरों की 'कवायद' थी या बंदरों का नाच था या किसी पाप का फल भुगतान था या 'फौजदारी' की सजा थी।.....जब सब लोगों की हाजिरी हो चुकी श्रीयुत लार्ड साहिब कोठी पधारे और सब लोग इस बंदीगृह से छूट-छूटकर अपने-अपने घर आए। रईसों के नंबर की यह दशा थी कि आगे के पीछे, पीछे क आगे अंधेर नगरी हो रही थी। बनारस वालों को न इस बात का ध्यान कभी रहा है और न रहेगा। ये बेचारे तो मोम की नाक हैं चाहे किधर फेर दो। हाय, पश्चिमोत्तर देशवासी कब कायरपन छोड़ेगें और कब इनकी उन्नति होगी और कब इनको परमेश्वेर वह सभ्यता देगा जो हिंदुस्तान के और खंड़ के वासियों ने पाई है।''[74]

धार्मिक कर्मकाण्ड, कुप्रथाओं, छुआछूत आदि पर भी उन्होंने व्यंग्यात्मक प्रहार किया है। उनके द्वारा लिखित 'एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न', 'अँधेर नगरी' आदि साहित्य भारतीय नागरिकों में राष्ट्रीय चेतना जागृत कर रहा था जो आज भी इस समाज में प्रासंगिक है। 'अंधेर नगरी' का चूरन प्रसंग व्यंग्य का एक उत्कृष्ट उदाहरण है-

"चूरन जब से हिंद में आया। इसका धन बल सभी घटाया।।

चूरन अमले सब जो खावैं। दूनी रिश्वत तुरत पचावैं।।

चूरन सभी महाजन खाते। जिससे जमा हज़म कर जाते।।

चूरन खावै एडिटर जात। जिनके पेट पचै नहिं बात।।

चूरन साहेब लोग जो खाता। सारा हिंद हजम कर जाता।।

चूरन पुलिस वाले खातें सब कानून हजम कर जाते ।।''[75]

चूरन प्रसंग में भारतेंदु ने एक साथ संपादक महाजन, पुलीस, साहब आदि सबकी खबर ली है। 'भारत दुर्दशा' में भारतीयों की अकर्मण्यता पर व्यंग्य है तो 'वैदिक हिंसा हिंसा न भवति' में मांशापजीवी तथा मदिरा सेवन करने वालों पर गंभीर व्यंग्य किया गया है। अंग्रेज स्तोत्र में अंग्रेज शासकों की लालची एवं लुटेरी प्रवृति से प्रभावित उनके शासन को इस प्रकार से प्रदर्शित किया गया है, ''तुम नृसिंह हो क्योंकि मनुष्य एवं सिंह दोनोंपन तुममें है। टैक्स तुम्हारा क्रोध है और परम विचित्र हो, क्योंकि तुम बामन कर्म में चतुर हो, तुम परशुराम हो क्योंकि पृथ्वी निक्षत्री कर दी है, अतएव हे लीलाकारिन्! हम तुमको नमस्कार करते हैं। खजाना तुम्हारा पेट है, लालच तुम्हारी क्षुधा है, सेना तुम्हारा चरण है, खिताब तुम्हारा प्रसाद है, अतएव हे विराटरूप अंगरेज! हम तुमको प्रणाम करते हैं।''[76]

भारतेंदु ने समकालीन समाज उच्चवर्ग और निम्न वर्ग की विसंगतियों पर भी व्यंग्य किया 'विषस्य विषमौषधम्' में भारतेंदु ने चाटुकारिता पर व्यंग्य करते हुए कहा है, ''वाह रे सिफारिशियों? अरे खुशामद की भी कुछ हद होती है। एक बादशाह ने हुक्म दिया बड़े-बड़े खुशामदी लाओ। तीन आदमी हाजिर किए गए। बादशाह ने पूछा, तुम खुशामद कर सकोगे? पहला बोला हुजूर क्यों नहीं? बादशाह ने उसे निकाल दिया। दूसरी से पूछा, तुम खुशामद कर सकोगे? उसने कहा, जहाँपनाह जहाँ तक हो सकेगी। बादशाह ने उसे भी निकाल दिया। तीसरे से पूछा, तुम खुशामद कर सकोगे? बोला, गरीब परवर क्या मजाल। भला मेरी ताकत है कि हुजूर की खुशामद कर सकूं। बादशाह ने कहा, हाँ यह पक्का खुशामदी है।''[77]

इस तरह यह स्पष्ट होता है कि भारतेंदु अपने समय के व्यंग्य ज्वालामुखी थे। उन्होंने अपने व्यंग्य के माध्यम से तत्कालीन समाज की वस्तुस्थिति का साक्षात्कार कराने का कार्य किया। उनकी व्यंग्य शैली अत्यंत प्रहारात्मक रही है। उनके जीवन की समझ एवं व्यंग्यात्मक तेवर समकालीन समाज का झकझोरने वाले थे। जिसका जीवन्त उदाहरण 'अंधेर नगरी' है। वह केवल एक नाटक ही नहीं है वरन् हजारों साल से चली आ रही राजशाही और सामंतशाही पर एक तीखी अभेद चोट के साथ-साथ कहीं न कहीं अंग्रेजों की पूरी शासन व्यवस्था को अपनी चपेट में ले लेता है। इस रूप में भारतेंदु ने व्यंग्य विधा में जो मील का पत्थर गाड़ा था उसकी ताकत और चमक आज भी एक कौंध पैदा करती रहती है।

भारतेंदु युग के समर्थ रचनाकारों में बालकृष्ण भट्ट ने भी अपने व्यंग्यों के लिए जाने जाते हैं। बालकृष्ण भट्ट ने सामाजिक समस्याओं पर जमकर लिखा है। 'बाल विवाह', स्त्रियाँ और उनकी शिक्षा, राजा और प्रजा, कृषकों की दुरव्यव्यवस्था, अंग्रेजी शिक्षा और प्रकाश, हमारे नये सुशिक्षितों में परिवर्तन, देश सेवा का महत्त्व, महिला स्वातंत्र्य आदि निबंध इसी प्रकार के निबंध है। भारतीय मानस की दुर्दशा के पीछे कहीं न कहीं रूढ़िवादिता का भी महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है अतः जर्जर रूढ़ियों पर वे कुठाराघात करते हैं। अपने खरे स्वभाव और साहसिक तेज के बल से जो भी व्यंग्य बाण उनकी लेखनी से निकलता था वह अपने लक्ष्य को भेदे बिना नहीं रहता था। डॉ. रामविलास शर्मा ने उन्हें भारतेंदु से भी बढ़कर युग का श्रेष्ठ क्रांतिकारी विचारक कहा है। भट्ट जी का जीवन अभावों से जुड़ा रहा किंतु उन्होंने परिस्थितियों से भी हार नहीं मानी। इन परिस्थितियों के कारण ही सामाजिक विषमता तथा राजनीतिक अन्याय के प्रति संचित क्षोभ ही व्यंग्य का रूप लेकर उनके साहित्य में आया।

बलकृष्ण भट्ट ने तत्कालीन भारतवासियों की दुर्दशा, मद्यपान, महाजनों की कंजूसी, स्त्रियों की दशा आदि सामाजिक बुराइयों को अपने व्यंग्य का आधार बनाया। अपने 'दीर्घायु' शीर्षक में तथाकथित प्रतिष्ठित लोगों की जीवंत शैली पर व्यंग्य किया है, "वकील बैरिस्टर तथा जान लोग दीर्घकालीन जीवन

इसलिए चाहते हैं कि कानूनों के काल में प्रजा को फँसाने के लिए हिंदी की बिंदी निकाल कानून की बारीकियों को सान चढ़ाते रहे। एडीटर दीर्घकालीन इसलिए चाहते थे कि अपनी कलम का मन अपनी ओर खींच ले पर सेंडिसन के भय ने उन्हें संकुचित कर दिया तो उनका हौंसला पस्त हो गया। हमारे सेठ जी दीर्घकालीन जीवन की इच्छा इसलिए रखते हैं कि गांजिया पर गांजिया रूपयों से भर तहखानों में सेंट के रखते जाएं।''[78]

भट्ट जी 'भक्ति शीर्षक' में मायाभक्ति के रूप में उन लोगों पर व्यंग्य किया है, जो विवाहोपरांत माता पिता भाई बहन आदि सभी रिश्ते नाते भूलकर केवल पत्नी की ही बात सुनते हैं, "मन वचन कर्म सर्वताभावेन अर्धांगिनी में दास्यभाव इसका सारांश है। माता पिता कुनबा-गोत सब से मुँह माड़ अनन्य भाव से पत्नी देवी की अराधना ही इस महाव्रत का साफल्य है।''[79]

स्त्रियों को अशिक्षा और पर्दा प्रथा पर व्यंग्य के रूप में भट्ट जी ने 'चलन की गुलामी' निबंध लिखा है जिसमें स्त्रियों की दशा का दृष्टांत उल्लेखनीय है, "घूँघट तीन हाथ का लम्बा लटकता हो, नख से शिख तक सोने से लदी हों पर पाँव नंगा रहेगा और बेड़ी की तरह एक-एक पाँव में पाँच-पाँच सेर का बोझ डाले संतोष और प्रसन्नता नहीं।''[80] अतः यहाँ पर पारम्परिक रूप में गहनों से लदी स्त्रियों पर व्यंग्य किया गया है जो घूँघट में रहती हैं फिर भी उन्हें श्रृंगार के नाम पर गहनों का बोझ ढ़ोना पड़ता है। इसी प्रकार कड़ाके की सर्दी में पुण्य-लाभ के लिए कार्तिक स्नान करने जाने की प्रथा थी। स्त्रियां के इस नहान में पुरूषों का साथ जाना अवश्य होता था। स्त्रियों की इस असहाय अवस्था का व्यंग्य चित्र भट्ट जी ने कार्तिक नहान निबंध में प्रस्तुत किया है "उन नहाने वालों के गिरोह में जो स्त्रियाँ थीं, वे गाजर मूली की तरह मर्दों के साथ घिसटती चली जा रही थीं।''[81] इस प्रकार भारतेंदु काल में स्त्रियों की दयनीय दशा पर व्यंग्य किया गया है।

भारतेंदु युगीन व्यंग्य परम्परा में प्रताप नारायण मिश्र का भी अग्रणी स्थान रहा है। ब्राह्मण पत्रिका के प्रत्येक अंक में सामाजिक एवं राजनीतिक पाखण्ड के संदर्भ में व्यंग्यात्मक चुटकियां लिया करते थे। देशी वस्तुओं का अनादर एवं देश भक्ति के प्रकार का ढ़ोल पीटने वालों के विरोधाभासी जीवन शैली पर व्यंग्य करते हुए वे कहते हैं-"देशी कारीगरों को देश ही वाले नहीं पूछते। विशेषतः जो छाती ठोक-ठोककर ताली बजवाकर कागज के तख्ते रंग-रंग कर देश हित के गीत गाते फिरते हैं, वह और भी देशी वस्तु का व्यवहार करना अपनी शान से बईद समझते हैं।"[82] अतः उस समय भी कथनी और करनी में बहुत अंतर होता था जिसे मिश्र जी बताने का प्रयास करते हैं।

प्रताप नारायण मिश्र व्यंग्य बाणों के माध्यम से समाज को सचेत करके उसे उन्नत पथ पर ले जाना चाहते थे। इस रूप में व्यंग्य मिश्र जी के लेखन का अविभाज्य अंग रहा है। उनका उद्देश्य व्यक्ति एवं समाज के अन्तर्संबंधों को मजबूत आधार उपलब्ध कराना था। इसलिए वे सामान्य विषय को लेकर भी उसके गर्भ में छिपे गम्भीर सनातन मानवीय सत्य को उद्घाटित कर लेते थे। 'दिन थोड़ा है', दूर जाना है, मुक्ति की धूप, देसी कपड़ा आय आदि शीर्षकों को देखते ही उनकी दृष्टि का परिचय मिल जाता है। नवीनता की खोज एवं गतिहीन परंपराओं पर चोट करना उनके व्यंग्य का केंद्रीय तत्त्व रहा है।

भारतेंदु युगीन परंपरा को आगे बढ़ाने में उस दौर के समर्थ गद्यकार राधाचरण गोस्वामी भी उल्लेखनीय है। ये बूट के माध्यम से अंग्रेजों की चमचागिरी करने वालों पर तीक्ष्ण प्रहार करते रहे हैं-"ऐसे बूट धारियों को खास रुतबा और खिताब मिल जाता है। वे राय साहब एवं राय बहादुर हो जाते हैं। शायद इसीलिए राधाचरण गोस्वाली भी बूट को बूट न कहकर 'मि. बूट' कहते थे और बूट गोरा हो या काला, पैरों को छूने के लिए हमेशा बेताब है।"[83]

इस प्रकार भारतेंदु युग में व्यंग्य की संवेदना राष्ट्रीय चेतना की भावभूमि पर तैयार हुई है। इस युग में साहित्यकारों ने अंग्रेजों की नीति, तथा उन भारतीयों पर तीक्ष्ण व्यंग्य प्रहार किए है जो अंग्रेजों की चमचागिरी करके उच्च पद पर आसीन हो जाते थे।

1.6.4 द्विवेदी युग में व्यंग्य परम्परा

व्यंग्य विधा की परंपरा में भारतेंदु युग की जिंदादिली, चुहुलता और फक्कड़पन द्विवेदी युग में आकर रुक सी गई। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के व्यक्तित्व के प्रभाव में इस काल में अपेक्षाकृत संयत मर्यादित रूप में व्यंग्य का विकास हुआ। बालमुकुंद गुप्त इस युग के बड़े सशक्त व्यंग्यकार थे। भारतेंदु तथा द्विवेदी युग के बीच की कड़ी थे। उन्होंने प्रहारात्मक, राजनीतिक व्यंग्य की रचना की। जनजागरण की तीव्र इच्छा के कारण ही उन्होंने व्यंग्य को प्रहारक तथा सुधारक के रूप में प्रयुक्त किया। 'शिवशम्भु के चिट्ठे, चिट्ठी और खत' उनके निबंधों के प्रमुख संग्रह है। इसमें उन्होंने राजनीतिक विसंगतियों को कलात्मक से उघाड़कर रख दिया है। इन्होंने विदेशी शासन पर व्यंग्य किए हैं। एक तत्कालीन वायसराय लार्ड कर्जन भारतवासियों को 'झूठा' कहा था। उसी को लक्ष्य कर गुप्त जी व्यंग्य करते हैं-

"हमसे सच की सुनो कहानी, जिससे मरे झूठ की नानी।

सच है सभ्य देश की चीज, तुमको उसकी कहाँ तमीज?

औरों को झूठा बतलाना, अपने सच की डींग उड़ाना।

ये ही पक्का सच्चापन है, सच कहना तो कच्चापन है।

बोले और करे कुछ और, यही सभ्य सच्चे के तौर।

मन में कुछ मुँह पे कुछ और, यही सत्य है कर लो गौर।

झूठ को जो सचकर दिखलावे, सो ही सच्चा साधु कहावे।

मुँह जिसका हो सके न बंद, समझो उसे सच्चिदानंद।।'[84]

द्विवेदी जी उस युग के सर्वश्रेष्ठ निबंधकार थे। नगर निगम के भ्रष्टाचार अंधाधुंध प्रशासन समाज में फैले अज्ञान, अंधश्रद्धा, छूआछूत आदि सभी पर उन्होंने व्यंग्य किए हैं। शिक्षा प्रणाली पर व्यक्ति तथा समाज के विविध दोषों, विसंगतियों पर उन्होंने व्यंग्यों की जो मार की है उनकी चोटों से दोषी बच नहीं सकता। व्यंग्य बाण के सही परिणाम के लिए उन्होंने छोटे-छोटे वाक्य, बोलचाल की भाषा तथा मुहावरों का योग्य प्रयोग किया है। इसी से उनके व्यंग्य पैने से पर रोचक बनते थे।

द्विवेदी युग की व्यंग्य परंपरा में नाथूराम शर्मा 'शंकर' का भी विशिष्ट स्थान है। 'गर्भरण्डा रहस्य' इनकी सुप्रसिद्ध व्यंग्य कविता है, जिसमें गर्भ में ही विधवा हो जाने वाली बालिका के माध्यम से सामाजिक एवं धार्मिक कुरीतियों पर कुठाराघात किया गया है।

बालमुकुंद गुप्त तथा महावीर प्रसाद द्विवेदी के पश्चात् सरदार पूर्ण सिंह, पं. चंद्रधर शर्मा गुलेरी तथा बाबू गुलाबराय के निबंधों में प्रचूर मात्रा में व्यंग्य देखने को मिलता है। पूर्ण सिंह ने निकम्मों, पाखंडियों, कुरीतियों, धार्मिक और सामाजिक रूढ़ियों, अंधविश्वासों, निकम्मे पादरियों पर, पाखण्डी मौलवियों तथा पण्डितों पर, 'सच्ची वीरता, पवित्रता, मजदूरी और प्रेम, आचरण की सभ्यता आदि निबंधों में जमकर आघात किया है। पं. चंद्रधर शर्मा गुलेरी ने खोखले रीति, रिवाज, ऊँच-नीच की भावना तथा लोगों की स्वार्थ बुद्धि पर जोरदार व्यंग्य किया है। ऐसे व्यंग्यों के उदाहरण 'मारोसि मोहि कुठाऊँ', 'सोहम', कछुआ धर्म' आदि निबंधों में पाये जाते हैं।

इसी प्रकार बाबू गुलाबराय ने भी अपने निबंधों द्वारा व्यंग्य की चोटे की हैं। नेताओं की विसंगतियाँ, समाज के अग्रणी भाग्य विधाता के नकलीपन पर, सरकारी अधिकारियों पर उन्होंने बहुतेरे

व्यंग्य किए हैं। सीमावर्ती चोर, ठलुआ क्लब, लेखक की आत्मकथा, बेकार वकील, आफत का मारा आदि उनके निबंधों में व्यंग्य के अच्छे उदाहरण देखने को मिलते हैं।

इसके अतिरिक्त ईश्वरीप्रसाद शर्मा, जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी, पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी आदि का नाम उल्लेखनीय है। किंतु द्विवेदी युग के व्यंग्य में वह प्रहार नहीं आ सका जिसकी नींव भारतेंदु युग में रखी गई थी।

1.6.5 स्वतंत्रता पूर्व व्यंग्य परंपरा

वस्तुतः भारतेंदु के परवर्ती युग में हिंद व्यंग्य साहित्य का नेतृत्व छायावाद के स्तम्भ कवि सूर्यकांत त्रिपाठी निराला के द्वारा किया गया। उनमें व्यंग्य की आत्मा को पहचानने वाली भारतेंदु जैसी दृष्टि थी। छायावादी युग ने भारतेंदु युग की अच्छी परंपराओं को विकसित करने में सहयोग प्रदान किया। राजनीतिक दशा में परिवर्तन न होने के कारण इस समय भी सामाजिक आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक परिस्थिति पहले जैसी ही बनी थी। अशिक्षित भारतीय जनता रूढ़ियों, अंधविश्वास, बाह्याडम्बर आदि से त्रस्त थी। कर का भार, अकाल, विषमता, जात-पांत छूआछूत आदि समस्याएं देश भर में उभर आयी थी। ऐसी विपन्न अवस्था में अंग्रेज शासकों के अत्याचार पर इस युग के व्यंग्यकारों ने अपने व्यंग्य प्रहार से लोगों के दुःख दर्द की पोल खोलने का कार्य किया।

व्यंग्य की इस असाधारण शक्ति को अपनी रचनाओं में आजमाने और उसके माध्यम से अपने समय का संवेदनात्मक इतिहास लिखने वालों में प्रेमचन्द एवं जयशंकर प्रसाद का भी विशिष्ट स्थान है। प्रेमचन्द द्वारा लिखित कहानियाँ बड़े भाई साहब, कफ़न, पूस की रात, दो बैलों की कथा आदि व्यंग्य से भरी पड़ी हैं। इनके उपन्यासों में भी व्यंग्य सर्वत्र लक्षित होता है। जमींदारों द्वारा किसानों का शोषण इनके सम्पूर्ण साहित्य में कहीं न कहीं दिखाई पड़ ही जाते हैं। 'गोदान' उपन्यास में किसान ठाकुर से इस रुपये

कर्ज माँगता है और ठाकुर उसे दस रूपये का दस्तावेज लिखवाकर पाँच रूपये नजराने और तहरीर, दस्तूरी एवं ब्याज के काट लेता है। इस पर किसान इस प्रकार अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता है-

"हाँ सरकार? अब पाँचो यह भी मेरी तरफ से रख लीजिए।

कैसा पागल है।

"नहीं सरकार, एक रुपया छोटी ठकुराइन का नजराना है, एक रूपया बड़ी ठकुराइन को। एक रूपया छोटी ठकुराइन के पान खाने का, एक बड़ी ठकुराइन के पान खाने को। बाकी बचा एक वह आपके क्रियाकरम के लिए।''[85] इस प्रकार प्रेमचन्द भोले-भाले किसानों को कर्ज देने के नाम पर ठाकुर, जमींदार किस प्रकार उनका शोषण करते हैं इसे अपने उपन्यास में उजागर करते नज़र आते हैं।

जयशंकर प्रसाद की 'ध्रुवस्वामिनी' में भी नारी दमन, जर्जर शासन व्यवस्था तथा भ्रष्ट और विलासी शासक पर चुभता हुआ व्यंग्य है। प्रसाद ने इसी प्रकार चंद्रगुप्त तथा समुद्रगुप्त जैसे ऐतिहासिक नाटको में ऐतिहासिक पात्रों के माध्यम से अंग्रेजों द्वारा भारतीयों पर किए जा रहे अत्याचारों, शिक्षा, धर्म, सामंती वर्ग सभी पर सटीक व्यंग्य किया है।

छायावादी चिंतकों की परंपरा में व्यंग्य की ताकत एवं मर्म को सबसे अधिक समझने वालों में निराला जी का विशिष्ट स्थान रहा है। इन्होंने जिन पर अन्याय होते देखा उनकी ओर से विरोध में आवाज़ उठाई। इसके लिए इन्होंने व्यंग्य को अपनाया। अपनी कहानियों तथा कविताओं के माध्यम से भेदभाव के विविध रूपों पर इन्होंने कड़े प्रहार किए हैं। 'कुल्ली भाट' इनका महत्त्वपूर्ण उपन्यास है, तो 'कुकुरमुत्ता' काव्य के रूप में व्यंग्य की विशिष्टता का प्रतिनिधित्त्व करता है। 'सरोज स्मृति' में तत्कालीन समाजिक असंगतियों को उजागर किया गया है। निराला अपने व्यंग्य के माध्यम से एक ओर दोषी को झकझोर देना

चाहते है तो दूसरी ओर नव जागरण भी लाना चाहते थे। कुकुरमुत्ता कविता में उन्होंने 'एलीट' वर्ग जो आम आदमी को उपेक्षा करते हैं, पर जमकर प्रहार किए हैं-

"पहाड़ी से उठा सर ऐंठकर बोला कुकुरमुत्ता-

अबे सुन बे, गुलाब

भूल मत गर पाई खुशबू, रंगो आब

खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट

डाल पर इतरा रहा कैपिटलिस्ट

कितनों को तूने बनाया है गुलाम"[86]

इस प्रकार इस कविता के माध्यम से निराला ने कुकुरमुत्ता (आम आदमी) द्वारा गुलाब (एलीट वर्ग) पर तीव्र व्यंग्य प्रहार किए है। 'कुकुरमुत्ता' कविता की जो ताकत है, वह दूसरे का खून चूसने वाले 'एलीट' वर्ग के गुलाब के मुकाबले ज़मीन पर पर रहे कुकुरमुत्ते की अक्खडता और व्यंग्यात्मकता की मार से पैदा हुई है। कुकुरमुत्ता दरिद्रों की, विपन्न और तिरस्कृत उपेक्षितों की आवाज है। इस कविता में पूँजीवादियों और साम्यवादियों पर करारा व्यंग्य किया गया है।

इसी प्रकार 'गर्म पकौड़ी, 'नी और कानी', 'खजोहरा', 'मास्को डायलाग', 'तोड़ती पत्थर', 'दान' आदि अनेक रचनाओं में निराला द्वारा तीखा व्यंग्य किया गया है। सियारामशरण गुप्त की रचनाओं में भी शोषण सामाजिक कुरीतियों, विदेशी भाषा का मोह रखने वालों आदि पर खूब व्यंग्य मिलते हैं।

हिंदी व्यंग्य परंपरा में स्वतंत्रता पूर्व के इस समय में भारत में अंग्रेजों का शासन होने के कारण समाज में जर्जरता कि स्थिति हो गई थी। अतः इस युग में व्यंग्य का उपयोग ढाल के रूप में किया गया।

व्यंग्य की ऐतिहासिक परंपरा से यह तथ्य परिलक्षित होता है कि भारतेंदु युग का किशोरावस्था का व्यंग्य स्वतंत्रापूर्व काल तक उत्तर किशोरावस्था में पहुँच चुका था। इस काल के कवियों ने भारतेंदु के पश्चात् व्यंग्य को नवीन दिशा दी और इसे आगे बढ़ाया। यथार्थवादी धरातल पर सामाजिक विषमता को उभारा और मौलिक अधिकारों के परिप्रेक्ष्य में जीवन मूल्यों की स्थापना का प्रयास किया। जिसके कारण व्यंग्य को प्रयोग का एक नवीन धरातल मिला। प्राप्त ज्ञान तथा स्वानुभाव के बल पर संयत होकर व्यंग्य का प्रहार इस युग का वैशिष्ट्य बन गया। अब व्यंग्य ने विश्लेषणात्मक आलोचना पद्धति का आलम्बन प्राप्त कर लिया, जिससे नवीन चिंतन का मार्ग प्रशस्त हुआ जिसका प्रतिफल स्वतंत्र्योत्तर व्यंग्य साहित्य में परिलक्षित होने लगा।

1.6.6 स्वातन्त्र्योत्तर व्यंग्य परम्परा :

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् राजनीतिक परिस्थिति बदलने के कारण समाज के सभी अंगों में परिवर्तन होने की अपेक्षा की गयी। संविधान निर्माण प्रक्रिया में धर्म निरपेक्ष राष्ट्र की संकल्पना अपनाई गई जिसके अनुसार प्रत्येक भारतीय नागरिक को अपने-अपने धर्म संप्रदाय के अनुरूप जीवन व्यतीत करने की स्वतंत्रता प्रदान की गई, किंतु इसी युग में नेताओं की कथनी-करनी में बड़ा अंतर आने लगा। चुनाव, दलबदल की प्रवृत्ति, नैतिक भ्रष्टता, अवसरवादिता, स्वार्थपरता, खुशामद आदि के कारण राजनीतिक पृष्ठभूमि पर वैविध्यपूर्ण विसंगतियाँ परिलक्षित होने लगीं। परिणामस्वरूप समाज की अधोगति की ओर बढ़ने लगा। स्वतंत्रता पूर्व के संजोये हुए सभी सपने टूटने लगे। कुरीतियों पारम्परिक आडम्बर, धार्मिक अभिनय, शिक्षा की विसंगतियां नये रूप में बढ़ने लगी। अफसर मनमानी करने लगे तो चपरासी में अपने को अफसर से कम नहीं समझते थे। देश में विकास कार्य के नाटक होने लगे तथा प्रशासन लूट की प्रक्रिया में संलग्न हो गया। विसंगतियों की व्यापकता की वास्तविक अभिव्यक्ति के लिये इस काल में व्यंग्य को फलने फूलने का मौका मिला।

स्वातन्त्र्योत्तर समाज की तत्कालीन परिस्थिति ने व्यंग्य विधा के लिए आलम्बन प्रदान किया। कबीर की व्यंग्य शैली से प्रभावित 'कबीर' के लेखक आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपनी आलोचनात्मक शैली में व्यंग्य को विकसित किया। 'कल्पलता' और 'अशोक के फूल' में संग्रहीत निबंध व्यंग्य तीव्रता को प्रमाणित करते हैं। उनके निबंध 'जब दिमाग खाली है' का एक उदाहरण उल्लेखनीय है, "हिंदू कहलाने वाले जीवों की बात कम विचित्र नहीं है। कभी-कभी तो ऐसी विचित्र बातें दुनिया के किसी भी कोने में मिल सकती हैं। यहाँ लोगों को कुत्ते-बिल्ली से भी बदत्तर माना जाता है। यहाँ विधवाओं को फुसलाया जाता है और गर्भपात करवाया जाता है। पर सती अन्यज रमणियों को प्रवेश नहीं करने दिया जाता क्योंकि वह हिन्दू हैं। यहाँ अन्याय को न्याय कहकर चला दिया जाता है।"[87] इस रूप में आचार्य द्विवेदी की व्यंग्यात्मक निबंधो की महत्ता इस तथ्य में निहित दिखाई देती है कि वह पाठक को सोचने पर ही विवश नहीं करते अपितु अनाचार के विरूद्ध स्वर ऊँचा करने का साहस भी करते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि स्वातन्त्र्योत्तर काल में द्विवेदी जी के निबंधों में व्याप्त व्यंग्य में भारतीय संस्कृति को पुनः प्रकाश में लाने के बाद, समाज में जागरण एवं नवचेतना लाने का प्रयत्न किया। इसी समय व्यंग्य में मजबूती के साथ साहित्य में उतारने के कार्य नागार्जुन द्वारा किया गया। उनके स्वभाव में जो विद्रोह था वह परिवेश से उन्हें प्राप्त हुआ था। उन्होंने सदा सर्वहारा वर्ग का प्रतिनिधित्व किया। निराला से प्रभावित होने के कारण निम्न वर्ग में जागृति लाने के लिए वह सीधे उनसे प्रश्न करते हैं। उनकी इस बातचीत में पीड़ित के प्रति संवेदना और उच्च वर्ग के प्रति व्यंग्य की फटकार दिखाई देती है-

"रहोगे तुम क्या सदा गुलाम?

हमेशा खाओगे उच्छिष्ट?

बेचते रहेंगे पशु की भांति

अरे, कब तक तुमको ये लोग?

हाय, पाकर भी मानव देह

तुम्हारा यो बदतर है हाल

तनिक भी ची-चू किया भी कि नहीं

खींच लेते हैं जिंदा खाल''[88]

नागार्जुन ने युग वैषम्य तथा अभावग्रस्त जीवन का डटकर सामना किया तथा अन्य को भी इसके लिए प्रेरित किया। उनकी रचनाओं में सरलता के साथ ही अंगारों का ताप भी भरा हुआ मिलता है। अपने उपन्यासों में इन्होंने अत्याचारी, पाखण्डी, स्वार्थी तथा भ्रष्ट लोगों के कुकृत्यों को अपने व्यंग्यों से उघाड़ा। व्यंग्य का यह अत्यंत सरल तेज स्पष्ट एवं प्रखर रहा है। इसी परम्परा को और अधिक सशक्त बनाने में प्रभाकर माचवे ने कीर्ति स्थापित की है। व्यंग्यात्मक और विचारात्मकता माचवे जी के साहित्य की विशेषता रही हैं। अपने व्यंग्यों के आलंबनों के विषय में उनका निम्न दृष्टांत उल्लेखनीय है-

"मेरे व्यंग्यों में मैं अपने को भी नहीं छोड़ता बल्कि 'आत्मगत सर्वभूतेषु' मैं देखता हूँ-जैसा भूत(प्राणी) मैं खुद हूँ औरों में भी उसी भूत को नाचते देखता हूँ''[89]

इस प्रकार स्वातन्त्र्योत्तर व्यंग्य की इस परंपरा में हजारी प्रसाद द्विवेदी, नागार्जुन, प्रभाकर माचवे, भारतभूषण अग्रवाल, रामविलास शर्मा ने आगे बढ़ाया। किंतु व्यंग्य को शिखर पर पहुँचाने का श्रेय व्यंग्यकार त्रयी हरिशंकर परसाई, शरद जोशी एवं रवींद्रनाथ त्यागी को जाता है। जिन्होंने न केवल अब तक की अज्ञात रही सम्भावना खोजी अपितु व्यंग्य को महज हास्य का जोड़ीदार समझे जाने वाली के रूप में स्थापित किया।

1970 के दशक में परसाईं जी ने 'व्यंग्य' को स्वतंत्र रूप में लिखना आरम्भ किया। परसाईं जी के व्यंग्यों ने समकालीन राजनीति की एक-एक परत को खोल कर जनता के सामने रख दिया। उन्होंने अपने व्यंग्यों में भ्रष्टाचार में लिप्त नेता, मंत्री, अफसर किसी को नहीं बख्शा। इनके व्यंग्यों में खास बात यह थी कि जिस व्यक्ति के विषय में व्यंग्य करते थे, उसके नाम का उल्लेख अपने व्यंग्यों में करते थे। जवाहरलाल नेहरू, इंदिरा गांधी, मोरार जी देसाई, चंद्रशेखर जैसे बड़े नेताओं पर व्यापक व्यंग्य इनकी रचनाओं में देखने को मिलते है। भ्रष्टाचार के विषय में परसाईं कहते हैं "सन् 1947 के बाद 4-6 साल तक भ्रष्टाचार की बात पिछड़ी नहीं लगती थी। वह चैंकाती थी, उस पर क्रोध आता था। मगर आज मैं भ्रष्टाचार की बात करूँ तो लोग कटेंगे। यह परसाईं समय से पिछड़ गया है। इसे कोई नई बात नहीं सूझती क्या?''[90]

परसाईं जी की ही भांति शरद जोशी जी ने भी व्यंग्य को विधा के रूप में स्थापित करने में बहुमूल्य योगदान दिया है। परसाईं जी की तरह ही जोशी जी ने भी समाज में व्याप्त विसंगतियों और विद्रुपताओं को अपना व्यंग्य का विषय बनाया और समाज में इस विसंगतियों को फैलाने वालों पर अपने व्यंग्यों से प्रहार किया। गरीबों पर हो रहे शोषण के विषय में वे कहते हैं, "हमारे देश में बड़े आदमी की हत्या होती है। गरीब को आत्महत्या करनी पड़ती है। उसे मारने को कोई खाली नहीं है। उनका शोषण किया जाता है मारा नहीं जाता। यदि किसी गरीब की हत्या हुई तो यह साबित करना पड़ता है कि यह आत्महत्या नहीं है।''[91] जोशी जी यह कहना चाहते हैं कि गरीबों का इतना शोषण किया जाता है कि उन्हें मारने की आवश्यकता नहीं है वह तो स्वंय ही आत्महत्या करने पर मजबूर हो जाता है।

इसी क्रम में रवीन्द्रनाथ त्यागी का भी व्यंग्य को शिखर की ओर ले जाने में विशेष योगदान रहा है। त्यागी जी सरकारी अधिकारी के पद पर रह चुके हैं अतः प्रशासनिक कमियों, अफसर के भ्रष्टाचारों को बड़े ही सटीक शब्दों में उन्होंने पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है। इसी संदर्भ में व्यंग्य करते हुए वे कहते हैं- "वे सरकारी कर्मचारी हैं। सरकारी तो वे हैं ही, क्योंकि सरकार से वेतन पाते हैं। पर कर्मचारी है या नहीं इस

पर एक से ज्यादा मत हो सकते हैं। कुछ विशेषज्ञों का अनुमान है कि वे सिवाय दफ्तर जाने और आने के और कोई काम नहीं करते।''[92] अतः उस के समय कोई अधिकारी कर्मचारी काम नहीं करना चाहता किंतु वेतन उन्हें समय पर चाहिए।

इस प्रकार हरिशंकर परसाईं, शरद जोशी, रवीन्द्रनाथ त्यागी इन व्यंग्यकार त्रयी ने व्यंग्य को एक विधा के रूप में स्थापित कर उसे हिंदी साहित्य में न केवल शिखर तक पहुँचाने का कार्य किया बल्कि व्यंग्य को उचित सम्मान भी दिलाया। व्यंग्य की इस परम्परा को आगे बढ़ाने में बरसाने लाल चतुर्वेदी, बालेन्दु शेखर तिवारी, लतीफ घोंघी, नरेंद्र कोहली आदि का भी विशेष योगदान रहा है। बरसाने लाल चतुर्वेदी 'बुरे फँसे', 'मुसीबत है', 'चैबे की डायरी', नरेंद्र कोहली की 'एक और लाल तिकोन', 'आश्रितों का विद्रोह', 'त्रासदियाँ', श्रीलाल शुक्ल की 'यहाँ से वहाँ', 'मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएं', 'राग दरबारी', शंकर पुणतांबेकर की 'कैक्टस के कांटे', 'अंगूर खट्टे नहीं है', 'प्रेम विवाह', लतीफ घोंघी की, 'जूते का दर्द', 'टूटी टाँग पर चिंतन', 'मुर्दानामा, डॉ. बालेंदु शेखर तिवारी की 'रिसर्च गाथा', 'किराएदार साक्षात्कार' आदि व्यंग्यकारों के व्यंग्य संकलनों ने 90 के दशक तक व्यंग्य को एक नए मुकाम पर पहुँचाने का कार्य किया। 70 से 90 के दशक के बीच के. पी. सक्सेना, 'नया गिरगिट', 'मूँछ-मूँछ की बात, डॉ. संसार चंद्र 'विजिट इंडिया, डॉ. इन्द्रनाथ मदान 'रानी और कानी', बहाने बाजी, डॉ. सुदर्शन मजिठिया, मुख्य मंत्री का डंडा', 'डिस्को कल्चर', 'इक्कीसवीं सदी', केशवचंद्र वर्मा 'लोमड़ी का माँस', मुर्गछाप हीरो, आदि व्यंग्यकारों के नाम भी व्यंग्य परंपरा को साहित्य में गति प्रदान करने के लिए उल्लेखनीय रहे हैं।

इसके अतिरिक्त गोपाल चतुर्वेदी जी भी आज के व्यंग्यकारों में अग्रणी स्थान रखते है। जिनका आगे के अध्यायों विस्तारपूर्वक उल्लेख किया गया है। आज के व्यंग्यकारों में अशोक चक्रधर, ज्ञान चतुर्वेदी, प्रेमजनमजेय आदि व्यंग्यकार भी वर्तमान समय में व्यंग्य को एक सही दिशा देने तथा व्यंग्य के

माध्यम से समाज में फैली विसंगतियों कुरीतियों आदि को मिटाने तथा भ्रष्टाचार का पर्दाफाश करने एवं आम जनता को जागृत करने के लिए प्रयत्नशील एवं प्रतिबद्ध हैं।

संदर्भ-सूची :

1. अनिल राकेशी, छायावादोत्तर काव्य में समाज समीक्षा, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, सं.1986, पृ.-32
2. सत्यव्रत सिंह, साहित्य दर्पण पर विमर्श, चौखम्भा विद्या भवन वाराणसी, सं.1995, पृ.-39
3. विश्वनाथ, साहित्य दर्पण, सं. सत्यव्रत सिंह, चौखम्भा विद्या भवन वाराणसी, सं.1949, पृ. 59
4. हिंदी साहित्य कोश (भाग-1), चौखम्भा विद्या भवन वाराणसी, सं.1995,पृ. 804
5. छविनाथ मिश्र, आधुनिक व्यंग्य के स्रोत और स्वरूप, क्लासिकल पब्लिशिंग हाउस, सं.1979, पृ.-7
6. सं. के कृष्णमूर्ति, आनंदवर्धन, ध्वन्यालोक, एम्.एल.बि.डी. दिल्ली,सं.1982, पृष्ठ-12
7. सं. के कृष्णमूर्ति, आनंदवर्धन, कारिका, एम्.एल.बि.डी. दिल्ली,सं.1979, पृ-10
8. अनिल राकेशी, छायावादोत्तर काव्य में समाज समीक्षा, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, सं.1986, पृ-33
9. वही, पृ.-33
10. डॉ. बालेन्दु शेखर तिवारी, हिन्दी स्वातन्त्रयोत्तर हास्य और व्यंग्य, अन्नपूर्णा प्रकाशन, सं.1978

पृ.50

11. कामिल बुल्के, अंग्रेजी हिंदी कोश, मुंशीलाल मनोहर लाल पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड नई दिल्ली, सं.1987, पृ.-592

12. रामचंद्र वर्मा, मानक हिंदी कोश, खण्ड़-1, हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, सं.1996, पृ.-123

13. डॉ. रामकुमार वर्मा, रिमझिम एकांकी, प्रतिभा प्रकाशन दिल्ली, सं.2002, पृ.-10

14. बरसाने लाल चतुर्वेदी, आधुनिक हिंदी काव्य में व्यंग्य, प्रभात प्रकाशन दिल्ली, सं.1993, पृ.-19

15. सं. डॉ. प्रेमनारायण टंडन, हिंदी साहित्य में हास्य और व्यंग्य, हिंदी साहित्य भंडार, लखनऊ, सं1975 पृ.-33

16. अनिल राकेशी, छायावादोत्तर काव्य में समाज समीक्षा, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, सं.1986, पृ-35

17. गिलबर्ट हिगेट, द अनाटमी ऑफ सेटायर, प्रिंसटन यूनिवर्सिटी प्रेस कोलम्बिया, सं.1973, पृ.-235

18. रणजीता, हिंदी की प्रगतिशील कविता,सं.1971, पृ.-344

19. सं. बद्रीनाथ कपूर, वृहत् पर्यायवाची कोश, लोकभारती प्रकाशन नई दिल्ली, सं.2012, पृ.-215

20. शेरजंग गर्ग, स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता में व्यंग्य, साहित्य भारती दिल्ली, सं.1973, पृ.-23

21. सी.टी. आंनियन, द शार्टर ऑक्सफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी, ओ.यू.पी. ऑक्स्फ़र्ड, सं.1966, पृ.-1792

22. बैब्स्टर्स, थर्ड न्यू इण्टरनेशनल डिक्शनरी, मैरियम बैब्स्टर्स यू.एस., सं.2008, पृष्ठ-73

23. हैरी शा, डिक्शनरी ऑफ लिटरेरी टर्म्स, मैकग्रा हिल हायर एजुकेशन, न्यूयार्क,सं.1972, पृ.-322

24. अनु. जॉन हेली डे, ए निकोल, थ्योरी ऑफ ड्रामा, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, सं.1988, पृ. 212

25. मेरीडिथ, आइडिया ऑफ कॉमेडी, गिलेन बीयर यूनिवर्सिटी ऑफ़, सं.1943, पृ.-62

26. जोनाथन स्विफ्ट, वैटिल ऑफ बुक्स, बेंजामिन मोटे, सं.1926, पृ.-6

27. मैथ्यू हागर्थ, सटायर, हिल्डशिम, ज्यूरिच, न्यूयार्क, सं.1930, पृ.-348

28. हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, सं.2006, पृ.-24

29. डॉ. रामकुमार वर्मा, रिमझिम एकांकी संग्रह, प्रतिभा प्रकाशन दिल्ली, सं.2002, पृ.-73

30. हरिशंकर परसाई, सदाचार का ताबीज़, भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली, सं.2010, पृ.-89

31. शेरजंग गर्ग, स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कविता में व्यंग्य, सामायिक प्रकाशन दिल्ली, सं.1972, पृ. 27-28

32. वीरेंद्र मेंहदीरत्ता, आधुनिक हिंदी साहित्य में व्यंग्य, सामायिक प्रकाशन दिल्ली, सं.1996,पृ.-15

33. नरेंद्र कोहली, मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएं, भूमिका,ज्ञानभारती प्रकाशन, सं.2002, पृ.-8

34. डॉ. बालेन्दु शेखर तिवारी, हिन्दी स्वातन्त्रयोत्तर हास्य और व्यंग्य, अन्नपूर्णा प्रकाशन कानपूर, सं.1978, पृ.-53

35. श्री मधुकर गंगाधर, 'निराला' जीवन और साहित्य, पृ.-76

36. बेढब बनारसी, 'नागरी' पत्रिका का बेढब स्मृति अंक, जून 1967, पृ.-56

37. अनिल राकेशी, छायावादोत्तर काव्य में समाज समीक्षा, वाणी प्रकाशन दिल्ली, सं.1986, पृ-40

38. हरिशंकर परसाई, तिरछी रेखाएं, व्यंग्य क्यों? कैसे? किसलिए, संभावना प्रकाशन, सं.1999, पृ.-28

39. डॉ. बालेन्दु शेखर तिवारी, हिन्दी स्वातन्त्रयोत्तर हास्य और व्यंग्य, अन्नपूर्णा प्रकाशन कानपुर, सं.1978, पृ.-56

40. स्टीफन लीलाक, हाउ टू राइट लंदन, कैम्ब्रिज कलेक्शन, सं.1969, पृ.-186

41. आर्थर पोलार्ड, सेटायर, मैथ्यू एंड कम्पनी, सं.1973, पृष्ठ-आमुख

42. सं. नारायण दीक्षित तथा त्रिलोकी नाथ दीक्षित, हास्य के सिद्धांत तथा आधुनिक

हिंदी साहित्य,प्रतिभा प्रकाशन दिल्ली, सं.1973, पृ.-96

43. हरिशंकर परसाई, तिरछी रेखाएं, व्यंग्य क्यों? कैसे? किसलिए, संभावना प्रकाशन दिल्ली, सं.1981 पृ.-30

44. डॉ. सावित्री सिन्हा, व्यास जी के हास्य निबंध, व्यास अभिनंदन ग्रंथ, पृ.-120

45. डॉ. बालेन्दु शेखर तिवारी, हिन्दी स्वातंत्र्योत्तर हास्य और व्यंग्य, अन्नपूर्णा प्रकाशन कानपुर, सं.1978, पृ.-25

46. हरिशंकर परसाई, सदाचार का ताबीज़, भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली, सं.2010, पृ.-12

47. सं. काका हाथरसी तथा गिरिराज शरण, श्रेष्ठ हास्य व्यंग्य कविताएं, प्रभात प्रकाशन दिल्ली, सं.1992, पृ.-5

48. अमृतराय, मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएं, ज्ञानभारती प्रकाशन, सं.1977, भूमिका

49. सं. काका हाथरसी तथा गिरिराज शरण, श्रेष्ठ हास्य व्यंग्य कविताएं, प्रभात प्रकाशन दिल्ली, सं.1992पृ.-10

50. वही, पृ.-7.

51. एल. जी. पोटस, कॉमेडी, केलिफोर्निया पब्लिशर्स, सं.1974, पृ.-155

52. डॉ. शेरजंग गर्ग, व्यंग्य के मूलभूत प्रश्न, साहित्य भारती प्रकाशन दिल्ली, सं.1989, पृ.-28

53. सं. रा. वा. पाटील, एक व्यंग्य यात्रा, आलोक सांस्कृतिक आकादमी, सं.1989, पृ.-10

54. सं. अमृतराय, नई कहानियाँ, नवम्बर 1969, पृ.-6

55. मेरीडिथ, आइडिया ऑफ कॉमेडी,गिलेन बीयर यूनिवर्सिटी ऑफ़ केलिफोर्निया प्रेस, सं.1965,पृ.-79

56. डॉ. शेरजंग गर्ग, व्यंग्य के मूलभूत प्रश्न, साहित्य भारती प्रकाशन दिल्ली, सं.1989, पृ.-29

57. सं. कन्हैयालाल नंदन, श्रेष्ठ व्यंग्य कथाएं, राजपाल एंड सन्ज दिल्ली, सं.2013, पृ.-7

58. गोपाल प्रसाद व्यास, साप्ताहिक हिंदुस्तान, 24 मार्च 1968, पृ.-8

59. शशि शुक्ला, हरिशंकर परसाई का व्यंग्य साहित्य, मेधा बुक्स प्रकाशन दिल्ली, सं.2007, पृ.-22

60. डॉ. कृष्णदेव झारी, रस शास्त्र साहित्य और समीक्षा, भारतेंदु भवन, चौखम्बा वाराणसी, सं.1985 पृ.-101

61. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, अशोक प्रकाशन दिल्ली, सं.2004, पृ.-32

62. सरोज खन्ना, हिंदी कविता में हास्य रस, लोकभारती प्रकाशन इलाहबाद, सं.1969, पृ.-51

63. वही, पृ.-50

64. डॉ. बापूराव घोंडू देसाई, हिंदी व्यंग्य विधाः शास्त्र और इतिहास, चिंतन प्रकाशन कानपुर, सं.1990 पृ.-87

65. डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, सं.2006,` पृ.-63

66. डॉ. श्याम सुंदर दास, कबीर ग्रंथावली,नागरी प्रचारणी सभा वाराणसी, सं.संवत्2011, पृ.-104

67. वही, पृ.-107

68. सं. डॉ. नगेन्द्र, वीणा, नवम्बर 1937, पृ.-33

69. डॉ. गंगा सहाय प्रेमी, भ्रमरगीत सार, हरीश प्रकाशन मंदिर आगरा, सं.1966, पृ.-65

70. तुलसीदास, कवितावली, अशोक प्रकाशन दिल्ली, सं.2008, पृ.-26

71. श्री जगन्नाथ रत्नाकर, बिहारी रत्नाकर, वाणी प्रकाशन दिल्ली, सं.1999, पृ.-63

72. सं. विद्यानिवास गोविंद रजनीश, रहीम ग्रंथावली, वाणी प्रकाशन दिल्ली, सं.2004, पृ.-69

73. सं. शिवप्रसाद काशिकेय, भारतेंदु ग्रंथावली भाग-दो, नागरी प्रचारणी सभा वनारासी, सं.संवत-2065 पृ.-811

74. सं. रामजी यादव, भारतेंदु संचयन, सामयिक प्रकाशन दिल्ली, सं.1966, पृ.-396-398

75. वही, पृ.-323

76. वही, पृ. 388-389

77 वही, पृ.-311

78. सं. अब्दुल बिस्मिल्लाह, भारतेंदु युगीन व्यंग्य, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, सं. 1988, पृ.-16

79. सं. डॉ. प्रेमनारायण टंडन, हिंदी साहित्य में हास्य और व्यंग्य, हिंदी साहित्य भंडार लखनऊ, सं.1975, पृ.-323

80. सं. धनंजय भट्ट, भट्ट निबंधमाला, भाग-1, पृ.-70

81. वही, पृ.-127

82. सं. डॉ. प्रेमनारायण टंडन, हिंदी साहित्य में हास्य और व्यंग्य, हिंदी साहित्य भंडार लखनऊ, सं.1975,पृ.-328

83. सं. त्रिलोकीनाथ चतुर्वेदी, साहित्य अमृत, अगस्त 2009, पृ.-67

84. सं. डॉ. नगेन्द्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, मयूर पेपर बैक्स नोएडा, सं.2012, पृ.-481

85. प्रेमचन्द, गोदान, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, सं.2006, पृ.-182

86. सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, कुकुरमुत्ता, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, सं.2009, पृ.-39

87. सं. मुकुंद द्विवेदी, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली, भाग 9, राजकमल प्रकाशन दिल्ली, पृ.-461

88. नागार्जुन, रत्नगर्भ, वाणी प्रकाशन, सं.2006, पृ.-17

89. प्रभाकर माचवे, तेल की पकौडियाँ, भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली, सं.1992, पृ.-8

90. सं. कमला प्रसाद, प्रकाश दुबे, हरिशंकर परसाई की चुनी हुई रचनाएं, वाणी प्रकाशन दिल्ली, सं.2013, पृ.-23

91. शरद जोशी, यथासंभव, भारतीय ज्ञानपीठ दिल्ली, सं.2002, पृ.-102

92. रवींद्रनाथ त्यागी, अतिथि कक्ष, राजपाल एंड सन्ज, सं.1997, पृ.-13